



# पंच प्रभा

सत्य, साहस, संकल्प, भाव और कर्म का पंचामृत!

संजीव कुमार सिंह



BlueRoseONE.com  
Stories Matter  
New Delhi • London





BLUEROSE PUBLISHERS  
India | U.K.

Copyright © Sanjeev Kumar Singh 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



BlueRoseONE<sup>com</sup>  
S t o r i e s   M a t t e r  
New Delhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,  
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS  
[www.BlueRoseONE.com](http://www.BlueRoseONE.com)  
[info@bluerosepublishers.com](mailto:info@bluerosepublishers.com)  
+91 8882 898 898  
+4407342408967

ISBN: 978-81-6744-305-2

Cover Design: Ajay Dhayni  
Typesetting: Sagar

First Edition: September 2026







## पंच—प्रभा

---

सत्य, साहस, संकल्प, भाव और कर्म का पंचामृत!

पाँच दिशाएँ, पाँचों नारी,  
पाँचों ज्योति, जग पर भारी।  
संजीव की कलम ने रचा इतिहास,  
पंच—प्रभा का हो अब नया प्रकाश।

—संजीव कुमार सिंह





## प्रस्तावना

---

### पंच प्रभा— एक युगान्तकारी चेतना

भारतीय वाङ्मय में 'पंचकन्या' (अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी) का स्मरण पाप—निवारक और कल्याणकारी माना गया है। किंतु, सदियों तक इन पाँच महान नारियों के व्यक्तित्व को केवल पौराणिक कथाओं और पुरुष—प्रधान समाज के दृष्टिकोण से ही देखा गया। महाकाव्य 'पंच प्रभा' इसी दृष्टिकोण को बदलने और उनके जीवन के अनकहे संघर्षों, उनकी असाधारण मेधा और उनके शाश्वत बलिदान को एक नया स्वर देने का एक विनम्र प्रयास है।

### रचना का उद्देश्य

इस महाकाव्य को लिखने का मूल उद्देश्य इन पाँचों नायिकाओं के भीतर की उस 'अग्नि' और 'प्रज्ञा' को खोजना था, जिसने उन्हें समय की सीमाओं से परे अमर बना दिया। यह काव्य केवल अतीत की गाथा नहीं है, बल्कि आज की आधुनिक नारी के लिए एक मार्गदर्शिका है। अहिल्या का धैर्य, कुंती की ममता, द्रौपदी का आत्मसम्मान, तारा का विवेक और मंदोदरी की शुचिता — ये पाँचों तत्व मिलकर एक पूर्ण मानवता का निर्माण करते



हैं।

## काव्य संरचना

‘पंच प्रभा’ दस सर्गों में विभाजित एक विस्तृत वैचारिक यात्रा है—प्रथम पाँच सर्ग प्रत्येक नायिका के वैयक्तिक जीवन और उनके अद्वितीय संघर्षों को समर्पित हैं। षष्ठम् एवं सप्तम् सर्ग उनकी साझा चेतना और उनके द्वारा समाज पर छोड़े गए अमिट प्रभावों का विश्लेषण करते हैं। अष्टम् एवं नवम् सर्ग उनके कालजयी अमरत्व और वर्तमान 21 वीं सदी के सामाजिक परिदृश्य में उनकी प्रासंगिकता को स्थापित करते हैं। दशम सर्ग ‘महा—उपसंहार’ के रूप में नारी—शक्ति को विश्व—शांति और सृजन के मूल आधार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

## कृतज्ञता ज्ञापन

यह काव्य माँ सरस्वती की कृपा और उन पाँचों महान ‘प्रभाओं’ के आशीर्वाद का फल है। मैं उन सभी पाठकों का आभारी हूँ जो इस काव्य के माध्यम से नारीत्व के एक नए और सम्मानित स्वरूप का दर्शन करेंगे। मेरा विश्वास है कि जब तक यह सृष्टि है, ‘पंच प्रभा’ की ये पाँचों रश्मियाँ अन्याय के विरुद्ध लड़ने और सत्य की राह पर चलने की प्रेरणा देती रहेंगी।



मैं यह कृति विश्व की उन समस्त नारियों को समर्पित करता हूँ जो अपने जीवन में चुपचाप किसी न किसी रूप में इन पाँचों महासतियों के संघर्ष को जी रही हैं।

—संजीव कुमार सिंह  
एरौत, (आरसीनगर), समस्तीपुर





## ॥ पंच प्रभा: नारीत्व का महा—आख्यान ॥

---

### एक युगान्तकारी महाकाव्य

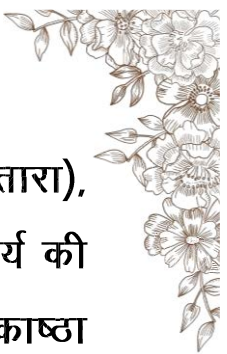
‘पंच प्रभा’ केवल एक काव्य—संग्रह नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास की पाँच सबसे चर्चित और विवादित नारियों—अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी—के अस्तित्व का एक नया और क्रांतिकारी विश्लेषण है। सदियों से इन ‘पंचकन्याओं’ के नाम का स्मरण तो किया गया, पर क्या कभी उनके हृदय के उन आंसुओं और उनकी मेधा की उस अग्नि को समझा गया जिसने काल को पराजित किया?

यह महाकाव्य 10 सर्गों के विस्तृत कैनवास पर फैला हुआ है, जो त्रेता और द्वापर की पौराणिक जड़ों से लेकर आज के 21 वीं सदी के ‘डिजिटल युग’ तक एक वैचारिक सेतु का निर्माण करता है।

### इस महाकाव्य की मुख्य विशेषताएँ—

नया दृष्टिकोण: यह नारियों को केवल ‘शापित’ या





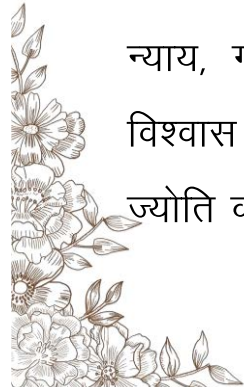
‘पीड़ित’ के रूप में नहीं, बल्कि कूटनीतिज्ञ (तारा), योद्धा (द्रौपदी), कुशल प्रशासक (मंदोदरी), धैर्य की प्रतिमूर्ति (अहिल्या) और बलिदान की पराकाष्ठा (कुंती) के रूप में प्रस्तुत करता है।

दार्शनिक गहराई: यह काव्य शरीर की पवित्रता से ऊपर उठकर ‘आत्मा की शुचिता’ और ‘नारी—अस्मिता’ के गहरे दार्शनिक प्रश्न उठाता है।

आधुनिक प्रासंगिकता: 9 वें सर्ग में आज की ‘वर्किंग वुमन’, ‘घरेलू हिंसा’, और ‘सोशल मीडिया’ के दौर में इन पाँचों प्रभाओं की जरूरत को बखूबी दर्शाया है।

वैश्विक संदेश: महाकाव्य का अंत एक वैश्विक शांति और पुरुष—नारी की ‘पूरकता’ के सिद्धांत के साथ होता है, जो इसे विश्व—साहित्य की एक महान कृति बनाता है।

‘पंच प्रभा’ एक आह्वान है—हर उस व्यक्ति के लिए जो न्याय, गरिमा और मानवीय मूल्यों की पुर्नस्थापना में विश्वास रखता है। यह रचना नारीत्व की उस अखंड ज्योति का वंदन है, जो कल भी प्रज्वलित थी और आज





भी हमारे भीतर प्रकाशित है।

आपके भीतर भी एक 'प्रभा' विद्यमान है। आशा है कि यह महाकाव्य आपकी सोई हुई शक्ति और स्वाभिमान को जगाने में एक मशाल सिद्ध होगा। अपनी अस्मिता को स्वयं पहचानें।

अहिल्या का धैर्य हो या द्रौपदी का प्रश्न, ये केवल कथाएँ नहीं, हमारे अस्तित्व का दर्पण हैं। इस 'पंच प्रभा' के प्रकाश में स्वयं को खोजने का एक विनम्र प्रयास करें।

सस्नेह

— संजीव कुमार सिंह  
ग्राम—पोस्ट: एरौत, वाया—रोसड़ा,  
जिला—समस्तीपुर, बिहार, पिनकोड— 848210,  
मोबाईल नम्बर: 9955644631, 7903904471



## विषय—प्रवेश

---

**प्रथम सर्गः** अहिल्या: पत्थर का मौनजड़ता से चेतना तक की यात्रा और न्याय का प्रश्न

**द्वितीय सर्गः** कुंती: ममता का अग्निपथ, लोक—लाज, त्याग और मातृ—शक्ति का संघर्ष

**तृतीय सर्गः** द्रौपदी: अस्मिता की ज्वाला, अपमान, प्रतिशोध और नारी—सम्मान की हुंकार

**चतुर्थ सर्गः** तारा: प्रज्ञा का प्रकाश, राजनीति, बुद्धिमत्ता और कूटनीतिक विवेक

**पंचम सर्गः** मंदोदरी: सतीत्व का शिखर, अधर्म के गढ़ में धर्म की स्थापना और शुचिता

**षष्ठ सर्गः** पंच—चेतना का महामिलन: पाँचों नारियों की साझा पीड़ा और वैचारिक एकता

**सप्तम सर्गः** समय का साक्ष्य और उत्तर—गाथा: पात्रों का उत्तर—जीवन और समाज पर चिरस्थायी प्रभाव

**अष्टम सर्गः** काल—अतिक्रमण और अमरत्वदेह से ऊपर उठकर: शाश्वत मूल्यों की अमरता

**नवम सर्गः** आधुनिक युग और पंच—प्रभा: 21वीं सदी की समस्याओं और आधुनिक नारी की प्रासंगिकता



दशम सर्गः महा—उपसंहारः विश्व संदेशपूर्णाहुतिः  
पूरकता का सिद्धांत और वैश्विक शांति





## आध्यात्मिक समर्पण

---

### ॥ समर्पण ॥

यह महाकाव्य ‘पंच प्रभा’ को मैं उन पाँच दिव्य ज्योतियों—अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी के पावन चरणों में समर्पित करता हूँ, जिन्होंने युगों—युगों से नारी—हृदय की पीड़ा, साहस और बुद्धिमत्ता को जीवंत रखा है।

यह कृति समर्पित है— सृष्टि की उस आदि—शक्ति को जो माँ, बहन, पत्नी और पुत्री के रूप में इस संसार को अपने स्नेह और त्याग से सींचती है।

उन अदृश्य हाथों को, जो घर और बाहर की जिम्मेदारियों के बीच अपनी ‘प्रभा’ को खोने नहीं देते।

यह समर्पण है उस भविष्य की ‘बेटी’ के नाम, जो इस काव्य को पढ़कर अपने भीतर की अहिल्या को जगाएगी और द्रौपदी सा स्वाभिमान पाएगी।

साथ ही, यह उन समस्त नारियों को समर्पित है, जो आज भी अपनी अस्मिता और गरिमा हेतु समाज की जड़ताओं से मौन या मुखर युद्ध लड़ रही हैं।

विनीत

संजीव कुमार सिंह





## । मंगलाचरणम् ।।

### शारदा वंदना

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्वयापिनीं,  
वाणी—रूपिणि! तव चरणों में, नत है यह मानस—किंकर ।  
शब्द—ब्रह्म की देह गढ़ूँ मैं, भावों का श्रृंगार करूँ,  
**‘पंच प्रभा’** के ज्योति—पुंज से, जन—मानस का द्वार  
भरूँ ।।

### शक्ति आवाहन

आदि शक्ति के पाँच अंश, जो इस धरती पर अवतरित हुए,  
छल, प्रपंच और अग्नि—परीक्षा, हँसकर जग में सदा सहे ।  
हे महाप्राण! हे सती स्वरूपा! दे मुझको वह ओज प्रखर,  
अहिल्या का धैर्य मिले, द्रौपदी का वह शोध प्रखर ।।

### काव्य संकल्प

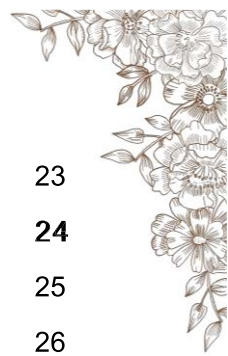
कुंती का संघर्ष लिखूँ मैं, तारा की मेधा महान,  
सत्य—धर्म की अडिग प्रतिष्ठा, मंदोदरी का पावन ज्ञान ।  
दश सर्गों की इस माला में, भावों का अर्पण स्वीकारो,  
लेखक की जड़ता को हरकर, नव चेतना को विस्तारो ।।



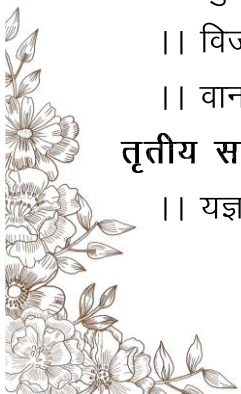


## अनुक्रमणिका

|                                            |    |
|--------------------------------------------|----|
| प्रथम सर्ग पाषाण का जागरण (अहिल्या)        | 3  |
| ॥ नियति का निर्जन तट ॥                     | 4  |
| ॥ गौतम का तपोवन और अहिल्या का रूप ॥        | 5  |
| ॥ इंद्र का कपट और रात्रि का प्रपंच ॥       | 6  |
| ॥ ऋषि का आगमन और वज्रपात ॥                 | 7  |
| ॥ कोप—ज्वाला और पाषाण—शाप ॥                | 8  |
| ॥ निर्जन तपोवन और सदियों का मौन ॥          | 9  |
| ॥ युगों की प्रतीक्षा और प्रकृति का संताप ॥ | 10 |
| ॥ राघव के आगमन की पदचाप ॥                  | 11 |
| ॥ चरण—स्पर्श और पाषाण का जागरण ॥           | 12 |
| ॥ मुक्त चेतना का प्रथम संवाद ॥             | 13 |
| ॥ विश्वामित्र का बोध और जगत का सत्य ॥      | 14 |
| ॥ पश्चात्ताप की सरिता और गौतम का स्मरण ॥   | 15 |
| ॥ राघव से विदाई और कृतज्ञता के अश्रु ॥     | 16 |
| ॥ आश्रम का नव—शृंगार और प्रकृति का हर्ष ॥  | 17 |
| ॥ आत्म—बोध और भविष्य का संकल्प ॥           | 18 |
| ॥ गौतम का प्रत्यागमन और हृदय का मिलन ॥     | 19 |
| ॥ समाज का संशय और अहिल्या का उत्तर ॥       | 20 |
| ॥ पंचकन्या की प्रथम ज्योति का तेज ॥        | 21 |
| ॥ सतीत्व का शाश्वत संदेश ॥                 | 22 |



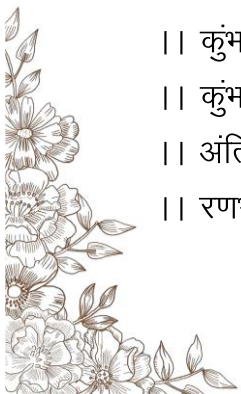
|                                                    |           |
|----------------------------------------------------|-----------|
| ॥ उपसंहार और कुन्ती की पदचाप ॥                     | 23        |
| <b>द्वितीय सर्ग मातृत्व और महासंग्राम (कुन्ती)</b> | <b>24</b> |
| ॥ कुन्ती का अर्तद्वंद और अतीत की आहट ॥             | 25        |
| ॥ दुर्वासा का आगमन और वरदान का बीज ॥               | 26        |
| ॥ कौतूहल का क्षण और सूर्य का आवाहन ॥               | 27        |
| ॥ कौमार्य का संकट और कर्ण का प्रादुर्भाव ॥         | 28        |
| ॥ मंजूषा का सफर और सुत का विसर्जन ॥                | 29        |
| ॥ पश्चात्ताप की अग्नि और नियति का नया मोड़ ॥       | 30        |
| ॥ पाण्डु का प्रयाण और माद्री का आत्मदाह ॥          | 31        |
| ॥ हस्तिनापुर आगमन और राजमहल का शीत-युद्ध ॥         | 32        |
| ॥ लाक्षागृह का षड्यंत्र और भयानक रात ॥             | 33        |
| ॥ चक्रनगरी का वास और भीम का बल ॥                   | 34        |
| ॥ द्रौपदी स्वयंवर और माँ का अनजाना आदेश ॥          | 35        |
| ॥ इंद्रप्रस्थ का वैभव और मय-सभा का सम्मोहन ॥       | 36        |
| ॥ क्रीड़ा का आमंत्रण और माँ की आशंका ॥             | 37        |
| ॥ वनवास का प्रस्थान और माँ का बिछोह ॥              | 38        |
| ॥ वनवास का प्रस्थान और माँ का बिछोह ॥              | 39        |
| ॥ अज्ञातवास की समाप्ति और युद्ध की दुंदुभी ॥       | 40        |
| ॥ गंगा तट पर कर्ण-कुंती मिलन ॥                     | 41        |
| ॥ कुरुक्षेत्र का महाविनाश और ज्येष्ठ सुत का पतन ॥  | 42        |
| ॥ विजय का फीका उत्सव और श्राप का भार ॥             | 43        |
| ॥ वानप्रस्थ गमन और द्वितीय सर्ग उपसंहार ॥          | 44        |
| <b>तृतीय सर्ग अग्निशिखा का प्रतिशोध (द्रौपदी)</b>  | <b>45</b> |
| ॥ यज्ञवेदी से प्राकट्य और प्रथम आभा ॥              | 46        |



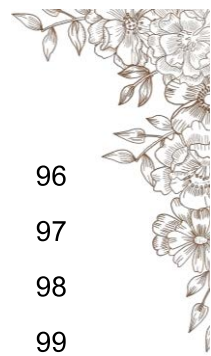
|                                                 |           |
|-------------------------------------------------|-----------|
| ॥ स्वयंवर की शर्त और मत्स्य-वेध ॥               | 47        |
| ॥ हस्तिनापुर में प्रवेश और ईष्या का विष ॥       | 48        |
| ॥ इंद्रप्रस्थ का निर्माण और मय- सभा का भ्रम ॥   | 49        |
| ॥ द्यूत-क्रीड़ा का निमंत्रण और पांडवों की हार ॥ | 50        |
| ॥ कृष्णा का आवाहन और दुशासन का दुस्साहस ॥       | 51        |
| ॥ चीरहरण का महाविनाश और कृष्ण का चमत्कार ॥      | 52        |
| ॥ द्रौपदी की भीषण प्रतिज्ञा और खुले केश ॥       | 53        |
| ॥ वनवास का कष्ट और जयद्रथ का दुस्साहस ॥         | 54        |
| ॥ अज्ञातवास और कीचक का वध ॥                     | 55        |
| ॥ शांति संदेश की असफलता और युद्ध का शंखनाद ॥    | 56        |
| ॥ कुरुक्षेत्र का प्रथम दिन और रक्त का अभिषेक ॥  | 57        |
| ॥ दुःशासन वध और केशों का रक्त-श्रृंगार ॥        | 58        |
| ॥ अश्वत्थामा का पाप और पुत्रों का वध ॥          | 59        |
| ॥ अश्वत्थामा का दंड और मणि का त्याग ॥           | 60        |
| ॥ हस्तिनापुर का राज्याभिषेक और रानी का मौन ॥    | 61        |
| ॥ कृष्ण का प्रयाण और द्वापर का अंत ॥            | 62        |
| ॥ महाप्रस्थान और हिमालय की चढ़ाई ॥              | 63        |
| ॥ द्रौपदी का पतन और युधिष्ठिर का उत्तर ॥        | 64        |
| ॥ तृतीय सर्ग उपसंहार और तारा की आहट ॥           | 66        |
| <b>चतुर्थ सर्ग मेघा की महाशक्ति (तारा)</b>      | <b>67</b> |
| ॥ किष्किंधा की आभा और तारा का परिचय ॥           | 68        |
| ॥ बाली का बल और तारा का परामर्श ॥               | 69        |
| ॥ सुग्रीव का निष्कासन और तारा का दुःख ॥         | 70        |
| ॥ राम का आगमन और तारा की शंका ॥                 | 71        |



|                                                   |           |
|---------------------------------------------------|-----------|
| ॥ बाली का हठ और रणभूमि का प्रस्थान ॥              | 72        |
| ॥ बाली वध और तारा का विलाप ॥                      | 73        |
| ॥ तारा का विवेक और सुग्रीव का राजतिलक ॥           | 74        |
| ॥ सुग्रीव का प्रमाद और लक्ष्मण का कोप ॥           | 75        |
| ॥ तारा की मन्त्रणा और वानर सेना का प्रस्थान ॥     | 76        |
| ॥ अंगद का संशय और माँ का सम्बल ॥                  | 77        |
| ॥ लंका विजय और राम का प्रत्यागमन ॥                | 78        |
| ॥ राजमाता का उत्तरदायित्व और अंगद का अभिषेक ॥     | 79        |
| ॥ दार्शनिक तारा और तत्त्व—बोध का ज्ञान ॥          | 80        |
| ॥ राम का राज्याभिषेक और अयोध्या की यात्रा ॥       | 81        |
| ॥ सुग्रीव का अंत और तारा का वैराग्य ॥             | 82        |
| ॥ तारा का आध्यात्मिक विदा और अमरत्व ॥             | 83        |
| ॥ मेधा और नीति का शाश्वत संदेश ॥                  | 84        |
| ॥ पंचकन्या और तारा का स्थान ॥                     | 85        |
| ॥ आधुनिक युग और तारा की प्रासंगिकता ॥             | 86        |
| ॥ उपसंहार और मंदोदरी की प्रतीक्षा ॥               | 87        |
| <b>पंचम सर्ग सतीत्व की स्वर्णिम आभा (मंदोदरी)</b> | <b>88</b> |
| ॥ मय—पुत्री का परिचय और लंका का ऐश्वर्य ॥         | 89        |
| ॥ रावण का मद और मंदोदरी की चेतावनी ॥              | 90        |
| ॥ सीता का अपहरण और सती का संताप ॥                 | 91        |
| ॥ कुंभकर्ण और मेघनाद का प्रस्थान ॥                | 92        |
| ॥ कुंभकर्ण और मेघनाद का प्रस्थान ॥                | 93        |
| ॥ अंतिम रण और रावण का महाप्रयाण ॥                 | 94        |
| ॥ रणभूमि में विलाप और राम का दर्शन ॥              | 95        |

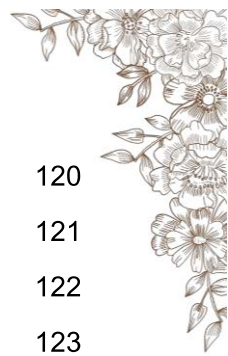




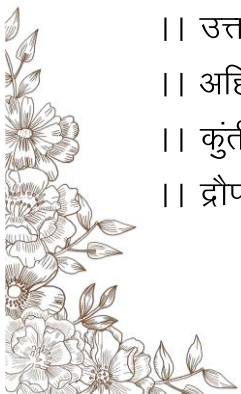


|                                                |            |
|------------------------------------------------|------------|
| ॥ सतीत्व की रक्षा और विभीषण का राजतिलक ॥       | 96         |
| ॥ अशोक वाटिका का मिलन और सीता की विदाई ॥       | 97         |
| ॥ आध्यात्मिक जागृति और लंका का पुनर्निर्माण ॥  | 98         |
| ॥ काल का प्रवाह और सती का निर्वाण ॥            | 99         |
| ॥ पंचकन्या का संयुक्त तेज और वैचारिक संगम ॥    | 100        |
| ॥ समाज की रूढ़ियाँ और नारी का प्रश्न ॥         | 101        |
| ॥ आगामी सर्गों की रूपरेखा और नया संकल्प ॥      | 102        |
| ॥ दार्शनिक निष्कर्ष – जड़ से चेतन की यात्रा ॥  | 103        |
| ॥ युगों का अंतराल और शाश्वत स्त्रीत्व ॥        | 104        |
| ॥ लेखक की आत्मकथात्मक अनुभूति ॥                | 105        |
| ॥ काव्य—शिल्प और सृजन की ऊर्जा ॥               | 106        |
| ॥ पाठक को संदेश और वैचारिक जागृति ॥            | 107        |
| ॥ पंचम सर्ग उपसंहार और षष्ठ सर्ग की भूमिका ॥   | 108        |
| <b>खंड –2 षष्ठम् सर्ग पंच—चेतना का महामिलन</b> | <b>109</b> |
| ॥ पंच—प्रभा का संगम और लेखक का ध्यान ॥         | 110        |
| ॥ अहिल्या का मौन और साझा अपमान ॥               | 111        |
| ॥ तारा का विवेक और नीति का संवाद ॥             | 112        |
| ॥ द्रौपदी की ज्वाला और प्रतिशोध का औचित्य ॥    | 113        |
| ॥ मंदोदरी का सतीत्व और पाप का प्रायश्चित ॥     | 114        |
| ॥ पंच—कन्या की परिभाषा और ऋषियों का मत ॥       | 115        |
| ॥ पुरुष सत्ता और नारी का संघर्ष ॥              | 116        |
| ॥ ममता और बलिदान की साझा व्यथा ॥               | 117        |
| ॥ भविष्य की नारी और पंच—प्रभा का संदेश ॥       | 118        |
| ॥ नियति और संघर्ष का दार्शनिक मिलन ॥           | 119        |





|                                                  |            |
|--------------------------------------------------|------------|
| ॥ पाँचों का राम और कृष्ण से नाता ॥               | 120        |
| ॥ लोक-लाज और मर्यादा की बेड़ियाँ ॥               | 121        |
| ॥ शक्ति का जागरण और चंडी का रूप ॥                | 122        |
| ॥ इतिहास के धुंधले पन्ने और लेखक की दृष्टि ॥     | 123        |
| ॥ पंच-प्रभा और प्रकृति का संबंध ॥                | 124        |
| ॥ आधुनिक नारी के द्वंद्व और पंच-प्रभा का सहारा ॥ | 125        |
| ॥ आत्म-संवाद और आध्यात्मिक अनुभूति ॥             | 126        |
| ॥ प्रेम, करुणा और क्षमा का महासागर ॥             | 127        |
| ॥ अखंड भारत और नारी-शक्ति का गौरव ॥              | 128        |
| ॥ षष्ठम् सर्ग उपसंहार और सप्तम सर्ग की ओर ॥      | 129        |
| <b>सप्तम सर्ग समय का साक्ष्य और उत्तर-गाथा</b>   | <b>130</b> |
| ॥ समय का प्रवाह और स्मृतियों का शेष ॥            | 131        |
| ॥ अहिल्या का पुनरागमन और ऋषि-कुल का पश्चाताप ॥   | 132        |
| ॥ कुंती का वैराग्य और हस्तिनापुर का विछोह ॥      | 133        |
| ॥ द्रौपदी का उत्तर-जीवन और पांडवों का अवसाद ॥    | 134        |
| ॥ तारा की राजनीति और अंगद का स्वर्ण-युग ॥        | 135        |
| ॥ मंदोदरी का लंका-सुधार और विभीषण का संबल ॥      | 136        |
| ॥ ऐतिहासिक प्रभाव और समाज की सोच ॥               | 137        |
| ॥ महाप्रस्थान की बेला और पार्थिव देह का त्याग ॥  | 138        |
| ॥ उत्तराधिकारियों का उत्तरदायित्व और नई पीढ़ी ॥  | 139        |
| ॥ अहिल्या की शिला और आधुनिक स्त्री का मौन ॥      | 140        |
| ॥ कुंती की ममता और युद्ध के विरुद्ध स्वर ॥       | 141        |
| ॥ द्रौपदी की अग्नि और न्याय की निरंतरता ॥        | 142        |



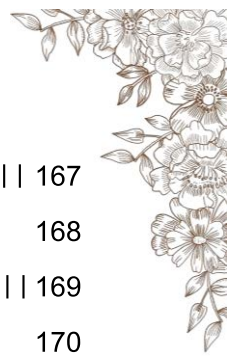


|                                                 |     |
|-------------------------------------------------|-----|
| ॥ तारा का ज्ञान और स्त्री-प्रज्ञा का उदय ॥      | 143 |
| ॥ मंदोदरी का सतीत्व और पाप के विरुद्ध विद्रोह ॥ | 144 |
| ॥ पंच-प्रभा और नारी-अस्मिता का नया दौर ॥        | 145 |
| ॥ इतिहास का पुनर्लेखन और लेखक का दायित्व ॥      | 146 |
| ॥ समय की पुकार और पंच-प्रभा का आवाहन ॥          | 147 |
| ॥ लोक-परलोक और अमरता का रहस्य ॥                 | 148 |
| ॥ पाठक का हृदय और पंच-प्रभा का संदेश ॥          | 149 |
| ॥ सप्तम सर्ग उपसंहार और अष्टम की ओर ॥           | 150 |

### **अष्टम सर्ग काल-अतिक्रमण और अमरत्व 151**

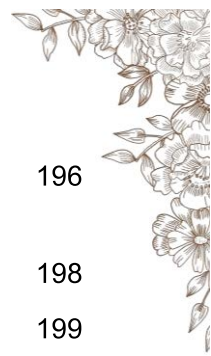
|                                                  |     |
|--------------------------------------------------|-----|
| ॥ काल के पार और सत्य की विजय ॥                   | 152 |
| ॥ अहिल्या का शाश्वत धैर्य और पत्थर की गवाही ॥    | 153 |
| ॥ कुंती का संघर्ष और ममता का अमर दीप ॥           | 154 |
| ॥ द्रौपदी की अग्नि और नारी-अस्मिता का अमरत्व ॥   | 155 |
| ॥ तारा का विवेक और मेधा की अमर ज्योति ॥          | 156 |
| ॥ मंदोदरी की शुचिता और सतीत्व का अमर गान ॥       | 157 |
| ॥ पाँचों का संयुक्त अमरत्व — पंचकन्या का रहस्य ॥ | 158 |
| ॥ नश्वर देह और अनश्वर चरित्र का द्वंद्व ॥        | 159 |
| ॥ काल का साक्षी और इतिहास का न्याय ॥             | 160 |
| ॥ आधुनिक युग में अमरता की प्रासंगिकता ॥          | 161 |
| ॥ पाँचों कन्याओं का आपसी दिव्य संवाद ॥           | 162 |
| ॥ पुरुष-सत्ता के विरुद्ध अमर विद्रोह ॥           | 163 |
| ॥ अध्यात्म और अमरत्व का गहरा संबंध ॥             | 164 |
| ॥ काल-अतिक्रमण का वैज्ञानिक और दार्शनिक आधार ॥   | 165 |





|                                                             |            |
|-------------------------------------------------------------|------------|
| ॥ लोक—स्मृति में अमरता और जन—मानस का आदर ॥                  | 167        |
| ॥ अमरता का मूल्य — त्याग और बलिदान ॥                        | 168        |
| ॥ लेखक का आत्म—समर्पण और अमरता की अनुभूति ॥                 | 169        |
| ॥ पंच—प्रभा का वैश्विक संदेश ॥                              | 170        |
| ॥ आने वाले युगों हेतु अमर प्रेरणा ॥                         | 171        |
| ॥ अष्टम सर्ग उपसंहार और नवम की ओर ॥                         | 172        |
| <b>नवम सर्ग आधुनिक युग और पंच—प्रभा</b>                     | <b>173</b> |
| ॥ कलयुग का आंगन और पंच—प्रभा का आगमन ॥                      | 174        |
| ॥ आज की अहिल्या और मानसिक जड़ता का शाप ॥                    | 175        |
| ॥ डिजिटल युग की द्रौपदी और साइबर अपमान ॥                    | 177        |
| ॥ कॉर्पोरेट की तारा और स्त्री— नेतृत्व की मेधा ॥            | 178        |
| ॥ घर के भीतर की मंदोदरी और घरेलू हिंसा के विरुद्ध विद्रोह ॥ | 179        |
| ॥ शिक्षा की ज्योति और पाँचों प्रभाओं का मिशन ॥              | 180        |
| ॥ राजनीति का मंच और पंच—प्रभा का नेतृत्व ॥                  | 181        |
| ॥ विज्ञान, अंतरिक्ष और पंच—प्रभा की उड़ान ॥                 | 183        |
| ॥ आधुनिक मनोरंजन और नारी की छवि का संकट ॥                   | 184        |
| ॥ आर्थिक स्वतंत्रता और पंच—प्रभा का स्वावलंबन ॥             | 185        |
| ॥ पर्यावरण की रक्षा और नारी का प्रकृति—प्रेम ॥              | 186        |
| ॥ आज के 'मी-टू' आंदोलन और द्रौपदी की गूँज ॥                 | 188        |
| ॥ खेलों का मैदान और पंच—प्रभा का पराक्रम ॥                  | 189        |
| ॥ पुरुष मानसिकता में बदलाव और लेखक की अपील ॥                | 191        |
| ॥ आधुनिक साहित्य और नारी की नई परिभाषा ॥                    | 192        |
| ॥ कानून, न्यायपालिका और पंच—प्रभा का संरक्षण ॥              | 194        |

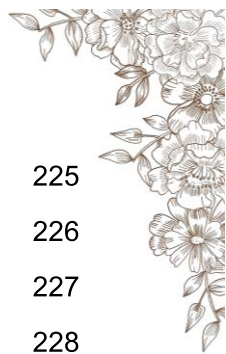




|                                                                  |     |
|------------------------------------------------------------------|-----|
| ॥ भविष्य की बेटी और पंच-प्रभा का आशीर्वाद ॥                      | 196 |
| ॥ लेखक का वैश्विक विजन और<br>'पंच प्रभा' का प्रसार ॥             | 198 |
| ॥ उपसंहार और महा-उपसंहार की ओर ॥                                 | 199 |
| ॥ महा-यज्ञ की पूर्णाहुति और रचना का गौरव ॥                       | 202 |
| ॥ पंच-तत्त्व और पंच-प्रभा का एकात्म भाव ॥                        | 204 |
| ॥ पंच-प्रभा का आध्यात्मिक निष्कर्ष –<br>मोक्ष और शक्ति ॥         | 205 |
| ॥ काव्य-रस और सौंदर्य का 'अध्यात्म-संगम' ॥                       | 206 |
| ॥ पुरुष और नारी – पूरकता का महा-सिद्धांत ॥                       | 208 |
| ॥ महाकाव्य का सार – 'सत्य, शिव और सुंदर' ॥                       | 209 |
| ॥ 'पंच प्रभा' का वैश्विक उद्घोष –विश्व शांति और<br>नारी-शक्ति ॥  | 210 |
| ॥ नारी का आत्म-सम्मान और समाज का दायित्व ॥                       | 214 |
| ॥ समाज के 'कर्णधारों' को अंतिम चेतावनी और बोध ॥                  | 215 |
| ॥ भविष्य का भारत और नारी-शक्ति का स्वर्ण-युग ॥                   | 216 |
| ॥ युवा पीढ़ी के नाम-एक ओजस्वी 'दीक्षा-मंत्र' ॥                   | 217 |
| ॥ काल के कपाल पर 'पंच प्रभा' का शिलालेख ॥                        | 218 |
| ॥ साहित्य-कुंज में 'नारी-विमर्श' की नई परिभाषा ॥                 | 219 |
| ॥ पंच प्रभा-पीड़ित मानवता हेतु एक संजीवनी ॥                      | 220 |
| ॥ महा-उपसंहार – 'पंच प्रभा' का शाश्वत संदेश और युग<br>परिवर्तन ॥ | 221 |
| ॥ रचनाकार का 'आत्म-बोध' और वैराग्य-भाव ॥                         | 222 |
| ॥ लेखक की अंतिम प्रार्थना और माँ शारदा का वंदन ॥                 | 223 |
| ॥ माँ भारती के चरणों में-अंतिम वंदना और अर्पण ॥                  | 224 |



|                                             |     |
|---------------------------------------------|-----|
| ॥ महा—उपसंहार—‘पंच प्रभा’ की अनन्त ज्योति ॥ | 225 |
| महाकाव्य की पुष्पिका                        | 226 |
| ॥ जयघोषः पंच प्रभा अभ्युदय ॥                | 227 |
| लेखकीय आभार                                 | 228 |
| निवेदन                                      | 229 |
| परिचय                                       | 230 |





## ॥ शुभारम्भ ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ काल के मोड़ पर, जहाँ न्याय सो गया है,

जहाँ एक नारी का अस्तित्व, पाषाण—खंड हो गया है।  
गौतम के क्रोध की अग्नि में, झुलस गई जो कोमल काया,  
मैंने उस मौन शिला के भीतर, आज एक स्पंदन पाया।

कैसे लिखूँ उस वेदना को, जो युगों से मौन है?  
छल इंद्र का, दण्ड तेरा—बता यहाँ दोषी कौन है?  
मेरी लेखनी कांपती है, उस जड़ता को छूने में,  
अहिल्या! मैं सहभागी हूँ, तेरे इस एकांत रोने में।

आ रहा है वह सूर्य—वंशी, जो शाप को वरदान करेगा,  
पर उससे पहले **संजीव**, तेरी व्यथा का गान करेगा।  
तू पत्थर नहीं, तू चेतना है, तू धैर्य की पराकाष्ठा है,  
तू ही इस महाकाव्य की, प्रथम और पावन निष्ठा है।







# प्रथम सर्ग पाषाण का जागरण (अहिल्या)

---





## ॥ नियति का निर्जन तट ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ आज उस सूने आश्रम के द्वार पर,  
जहाँ काल ठहर गया है आकर, नियति के उस पार पर।  
गौतम की कुटिया मौन है, पुष्प भी सब कुम्हला गए,  
ऋषियों के पावन मंत्र भी, अब सन्नाटे में समा गए।

मेरी आँखों के सामने, वह पाषाण खण्ड खामोश है,  
पूछता है मुझ—सा कवि, क्या यह विधाता का दोष है?  
निर्दोष अहिल्या सो रही, पत्थर की कठोर देह में,  
लिपटी हुई है वेदना, विवशता और संदेह में।

मैं अनुभव करता हूँ वह पीड़ा, जो शिला के भीतर बंद है,  
जहाँ न कोई किरण है, न पुष्पों की कोई गंध है।  
छल की वह काली रात थी, जब इंद्र रूप बदल कर आया,  
और एक सती के पुण्य पर, उसने पाप का जाल बिछाया।

मैं अपनी इस लेखनी से, उस जड़ता को अब तोड़ दूँ  
पाषाण के उस मौन को, मैं शब्द—सरिता से जोड़ दूँ।  
मेरी चेतना कहती है, यह केवल पत्थर की माया नहीं,  
यह स्त्री के स्वाभिमान की, झुलसी हुई एक काया नहीं।

## ॥ गौतम का तपोवन और अहिल्या का रूप ॥

मैं **संजीव** देख रहा हूँ कल्पना में, वह दिव्य तपोवन पावन सा,

जहाँ गूँजता था सामवेद, शीतल मधुमय सावन सा ।  
गंगा की लहरें स्पर्श हेतु, चरणों में शीश झुकाती थीं,  
और अहिल्या की सुंदरता, देवों का मन भरमाती थीं ।

ब्रह्मा की वह अनुपम रचना, जिसमें न कोई विकार रहा,  
वह रूप जिसे देख सृष्टि में, चकित स्वयं संसार रहा ।  
गौतम की निष्ठा बनकर जो, आश्रम की ज्योति जलाती थी,

अपनी पावन मुस्कानों से, ऋषियों का मन हर्षाती थी ।

मैं **संजीव**, उस छवि को जब, पन्नो पर अंकित करता हूँ,  
उस विमल सती के चरणों में, अपनी श्रद्धा को भरता हूँ ।  
वह नहीं जानती थी कि उसे, विधाता क्या फल देगा,  
उसका ही अदम्य सौंदर्य, उसकी खुशियाँ छल लेगा ।

कैसी विडंबना है जग की, सुंदरता ही शाप बनी,  
जो बनी जगत का उजियारा, वह स्वयं घोर संताप बनी ।  
उस सती—साध्वी की आँखों में, मैंने एक स्वप्न निराला देखा,  
पर उसी स्वप्न के पीछे मैंने, कलुषित काली ज्वाला देखा ।

## ॥ इंद्र का कपट और रात्रि का प्रपंच ॥

जब सोई थी पूरी दुनिया, तब इंद्र का मन डोल गया,  
अमरावती का अधिपति, मर्यादा के सब द्वार खोल गया।  
मैं **संजीव**, देख पाता हूँ, उस देवराज की कातरता,  
कैसे पद और मद ने उसकी, खो दी थी सब  
शुचिता—वीरता।

चंद्र बना सारथी और, कुक्कुट ने झूठ पुकारा था,  
भोर नहीं हुई थी लेकिन, उसने समय को मारा था।  
ऋषि गौतम निकले सरयू तट, करने को संध्या—वंदन,  
इधर, कपट ने कर डाला, उस पावन आश्रम का खंडन।

गौतम का रूप धर आया वह, जिसे वासना घेरे थी,  
वह रात नहीं थी अहिल्या की, वह पापों की अंधेरी थी।  
मैं लिखता हूँ वह क्षण जब, सती का सतीत्व लजाया था,  
देवराज के नीच कर्म ने, स्वर्ग पर धब्बा लगाया था।

अहिल्या अनभिज्ञ थी उस, षड्यंत्रकारी के माया से,  
घिरी हुई थी काल—चक्र की, मरुस्थल वाली छाया से।  
मैं विचलित हूँ इस दृश्य पर, लेखनी मेरी रोती है,  
जब छल के हाथों में जाकर, नियति भी मति खोती है।



## ॥ ऋषि का आगमन और वज्रपात ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस भोर के धुंधले आँगन में,  
जहाँ प्रलय की पदचापें हैं, मुनि गौतम के अंतर्मन में।  
सरयू के शीतल जल से वे, कर वंदन वापस आए थे,  
पर कुटिया के उस द्वारे पर, अमंगल के साये छाये थे।

तप के बल से जान लिया, किसने मर्यादा तोड़ी है,  
किस कामी ने इस आश्रम की, पावनता पीछे छोड़ी है।  
इंद्र भागता मिला वहाँ से, अपना रूप छिपाए हुए,  
एक सती के जीवन में, वह विष की बेल उगाए हुए।

मैं देख रहा हूँ क्रोधाग्नि, मुनि के नेत्रों से बरस रही,  
अहिल्या निर्दोष खड़ी, पर न्याय हेतु है तरस रही।  
एक पल में बिखर गया वह, वर्षों का तप और संयम,  
जहाँ प्रेम और विश्वास था, वहाँ खड़ा था काल विषम।

मेरे शब्द सिहर उठते हैं, उस क्षण की भीषणता से,  
जब काँप उठी थी धरती भी, मुनि की उस भीषणता से।  
एक पुरुष का अहंकार, जब घायल होकर गर्जा था,  
तब नियति ने भी अपना मुँह, आहत होकर वर्जा था।



## ॥ कोप—ज्वाला और पाषाण—शाप ॥

---

गौतम का वह प्रचंड स्वर, जैसे कोई वज्र गिरा,  
शाप का वह तीर चला, जिससे सारा संसार डरा।  
रे दुराचारिणी! जा अब तू, जड़ पाषाण बन जाएगी,  
इस धरती पर तू नारी की, पीड़ा ही बस गाएगी।

मैं **संजीव**, सुन रहा हूँ वह, शापमयी वाणी विकराल,  
जिसने एक पल में बदला, उस अबला का पूरा हाल।  
न कोई देखेगा तुझको, न कोई तुझसे बोलेगा,  
तेरी देह का यह पत्थर, काल का बोझ ही ढोलेगा।

अहिल्या ने न तर्क किया, न स्वयं को निर्दोष कहा,  
सहन किया उस शाप को, जैसे गंगा ने सब सहा।  
पर मेरे मन में प्रश्न उठा, क्या दंड यही था न्यायपूर्ण?  
क्या स्त्री की गरिमा का, मर्दन ही था धर्म पूर्ण?

मैं लिखता हूँ उस क्षण को, जब कोमल अंग हुए पत्थर,  
देख रही थी दुनिया सारी, यह अन्याय और यह डर।  
एक ऋषि की तपोशक्ति ने, प्राणों को जड़ कर डाला,  
और सती के माथे पर, लिख दिया कलंक का काला।



## ॥ निर्जन तपोवन और सदियों का मौन ॥

---

अब वह कुटिया नहीं रही, वह केवल एक वीराना है,  
जहाँ न्याय की आस लिए, बैठा एक जमाना है।  
मैं **संजीव**, उस मौन शिला के, पास खड़ा हूँ विचलित सा,  
वह पत्थर नहीं, वह सत्य खड़ा है, सदियों से प्रज्वलित  
सा।

धूप सही उसने सिर पर, और शीत लहर को झेला है,  
सन्नाटे की उस बस्ती में, वह जीवन बड़ा अकेला है।  
पशु-पक्षी भी दूर हुए, उस शापित निर्जन कानन से,  
पर मैं सुनता हूँ सिसकी, उस पत्थर के अंतर्मन से।

कैसे काट रही होगी वह, पल-पल युग के समान वहाँ,  
जहाँ न कोई सांत्वना है, और न कोई मान वहाँ।  
गौतम तो वन चले गए, मन में ग्लानि का भार लिए,  
पर वह सती पड़ी है पथ पर, राम की बस बाट लिए।

मेरी कलम गवाही देगी, इस शाश्वत इंतजार की,  
उस पत्थर में छुपे हुए, एक सुलगते से सत्कार की।  
दस सर्गों की इस माला का, यह पहला करुण पड़ाव है,  
अहिल्या की यह पीड़ा ही, मेरा मुख्य पड़ाव है।



## ॥ युगों की प्रतीक्षा और प्रकृति का संताप ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ युग बीत रहे हैं जल की धार सदृश,  
वह पत्थर अब भी अडिग खड़ा, लिए हुए एक अमिट टीस।  
कितने सावन आए—गये, कितनी पतझड़ ने साथ छोड़ा,  
पर उस शापित एकाकीपन ने, अपना मुख कभी नहीं  
मोड़ा।

नदियों ने अपनी धारा बदली, पर्वतों ने भी शीश झुकाए,  
पर अहिल्या के उस जड़ जीवन में, कोई रंग न भर पाए।  
सूरज की तपिश ने झुलसाया, बर्फीली रातों ने घेरा,  
मौन खड़ी वह राह देख रही, कब होगा नया एक सवेरा।

मैं अपनी लेखनी से उस, शाश्वत धैर्य को नमन करूँ,  
उस पत्थर की हर दरार में, संवेदना के भाव भरूँ।  
क्या दोष था उसका? मैं अक्सर, खुद से यह प्रश्न पूछता  
हूँ,  
और मौन के उस गहरे सागर में, शब्दों को ढूँढता हूँ।

वह केवल पत्थर नहीं, वह स्त्री के गौरव की थाती है,  
जो अपमान के मरुस्थल में, बन गई अमृत की बाती है।  
दश सर्गों का यह सफर, उसी की गरिमा को अर्पण है,  
**‘पंच प्रभा’** का प्रथम दीप, उस सती का ही तर्पण है।





## ॥ राघव के आगमन की पदचाप ॥

---

दूर कहीं से गूँज उठी अब, पावन चरणों की आहट,  
हवाओं ने भी बदल ली दिशा, होने लगी सुखद  
सरसराहट ।

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ वह, दिव्य छटा जो आती है,  
अन्धकार को चीरकर जो, नव-प्रकाश फैलाती है ।

संग चले हैं विश्वामित्र, और दो सुकुमार धनुर्धारी,  
जिनकी आभा देख धन्य हुई, आज यह वाटिका भारी ।  
नील कमल दल श्याम वर्ण, वह राघव का पावन स्वरूप,  
जिसके तेज के आगे फीका, पड़ता है वह प्रचंड धूप ।

ऋषि ने संकेत किया उस ओर, जहाँ वह शिला विराजी  
थी,  
जिसकी किस्मत सदियों से, एक शाप के हाथों हारी थी ।  
राम! देखो यह पाषाण-खंड, जो कभी सती अहिल्या थी,  
छल की बलि चढ़ गई जो, वह गौतम की प्रिय भार्या थी ।

मैं लिखता हूँ वह सिहरन, जो उस पत्थर ने महसूस करी,  
जैसे मरुस्थल की छाती पर, कोई गंगा आके उतर पड़ी ।  
परम चेतना ने जब आज, जड़ता के द्वार खटखटाए,  
लगता है जैसे सदियों के, सब सोए भाग्य जाग आए ।

## ॥ चरण-स्पर्श और पाषाण का जागरण ॥

आगे बढ़कर रघुनंदन ने, जैसे ही वह चरण बढ़ाया,  
उस पत्थर की निर्जीव देह में, जीवन का संचार समाया।  
मैं **संजीव**, साक्षी हूँ उस, पल भर के उस महा-मिलन का,  
धूलि के एक स्पर्श ने, धो दिया कलंक उस पावन मन का।

शिला चटकने लगी स्वतः ही, दिव्य ज्योति प्रस्फुटित हुई,  
पाषाण के भीतर की वह, चेतना अब जागृत हुई।  
प्रकट हुई वह महाभागा, जैसे बादलों से चाँद निकले,  
सारे जग के कलुष और, सब शाप और संताप ढले।

आँखों में आँसू की धारा, मुख पर वह विमल कृतज्ञता,  
जैसे मिल गई हो खोई हुई, वह पावन आत्म-संपन्नता।  
राम के चरणों में गिरकर, उसने अपना मान पाया,  
पुरुष-दण्ड से मुक्त हुई, वह स्त्री का सम्मान पाया।

मेरी लेखनी धन्य हुई, इस दृश्य को पन्नों पर पाकर,  
जहाँ न्याय स्वयं चलकर आया, सती का सत्कार  
सजाकर।

**‘पंच प्रभा’** की पहली किरण, अहिल्या अब मुस्काती है,  
वह जड़ता से चेतन होकर, मुक्ति का मार्ग दिखाती है।



## ॥ मुक्त चेतना का प्रथम संवाद ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ वह दिव्य रूप जो प्रकट हुआ,  
जड़ता के उस कारागृह का, आज अंत यह अमिट हुआ।  
खोली आँखें अहिल्या ने, तो सामने खड़ा विधाता था,  
वही राम जो जगत का स्वामी, वही मुक्ति का दाता था।

बोली वह—हे राघव! तुमने मुझ पर करुणा अपार की,  
धूलि ने तेरे, मेरी देह की, हर जड़ता को पार की।  
पर क्या यह पत्थर का जीवन, केवल मेरा ही दंड था?  
या पुरुष—अहं का वह प्रहार, जो हुआ बड़ा पाखंड था?

मैं लिखता हूँ वह प्रश्न, जो सती की आँखों में तैर रहा,  
न्याय मिल गया फिर भी मन में, एक द्वंद्व है ठहर रहा।  
क्या स्त्री की देह ही केवल, परीक्षा की वेदी है?  
क्या उसकी पावनता की, दुनिया ही बस प्रतिवेदी है?

राम मौन थे, पर आँखों में, एक गहरा सम्मान रहा,  
अहिल्या के उस साहस का, उनको भी पूरा भान रहा।  
मेरी लेखनी इस संवाद को, युगों तक अब दोहराएगी,  
मुक्ति की इस पहली बेला को, 'पंच प्रभा' में गाएगी।



## ॥ विश्वामित्र का बोध और जगत का सत्य ॥

---

विश्वामित्र ने तब राघव को, उस सती का परिचय दिया,  
इतिहास के उस धुंधले पन्ने का, फिर से संचय किया।  
मैं **संजीव**, सुन रहा हूँ वे, शब्द जो सत्य बताते हैं,  
जो लोक—लाज के भय से अक्सर, कहीं दब से जाते हैं।

ऋषि बोले—यह अहिल्या है, जो ब्रह्मा की सुता अनूप है,  
यह स्त्री के अदम्य धैर्य का, एक ज्वलंत स्वरूप है।  
इंद्र का छल, मुनि का कोप, सब इसने चुपचाप सहा,  
पर इसने अपनी गरिमा को, कभी न बहने दिया अहा!

मैं लिखता हूँ वह ज्ञान, जो ऋषि की वाणी से फूट रहा,  
झूठे मान—मर्यादा का, हर बंधन अब टूट रहा।  
अहिल्या का यह पुनर्जन्म, बस एक नारी का उत्थान नहीं,  
यह धर्म की उस विजय का है, जिससे बड़ा विधान नहीं।

लेखक के नाते मेरा मन, इस सत्य को प्रणाम करे,  
अहिल्या की यह पावन कथा, जन—जन का कल्याण करे।  
षड्यंत्रों की काली छाया, अब पूर्णतः छँट चुकी है,  
पाषाण की वह कठिन परत, अब खंड—खंड बंट चुकी है।



## ॥ पश्चात्ताप की सरिता और गौतम का स्मरण ॥

---

अब अहिल्या की स्मृतियों में, गौतम का वह आश्रम आया,  
जहाँ प्रेम और तपस्या ने, सुंदर एक संसार सजाया।  
मैं **संजीव**, महसूस करूँ वह, कसक जो उसके सीने में,  
कैसी कड़वाहट भर दी थी, नियति ने उसके जीने में।

वह दोषी नहीं थी, फिर भी उसने, पति का क्रोध शिरोधार्य  
किया,  
अपनी पवित्रता का उसने, मौन रहकर ही स्वीकार्य किया।  
अब मुक्त हुई तो मन में, फिर से वही अनुराग जगा,  
गौतम के चरणों की सेवा का, फिर से एक सुराग जगा।

मैं पूछता हूँ खुद से—क्या वह, फिर उसी द्वार पर जाएगी?  
क्या वह समाज की तीखी नजरों से, खुद को बचा पाएगी?  
पर अहिल्या का तेज निराला, अब शंका से परे खड़ा,  
उसका आत्मबल तो अब, आकाश से भी है और बड़ा।

मेरी लेखनी इस मोड़ पर, थोड़ा सा ठहरती है,  
एक स्त्री के अंतर्मन की, गहराई को भरती है।  
शाप कटा पर क्या यादों का, वह घाव कभी भर पाएगा?  
क्या बीता हुआ वह सुखद समय, फिर वापस लौटकर  
आएगा?



## ॥ राघव से विदाई और कृतज्ञता के अश्रु ॥

---

मैं **संजीव**, साक्षी हूँ उस विदाई के क्षण का अब यहाँ,  
जहाँ भक्ति और करुणा का, मिलन हो रहा था जहाँ।  
अहिल्या के नयनों में जल था, पर हृदय में संतोष था,  
मिट गया था सारा संताप, न नियति पर कोई रोष था।

हे राम! तुमने मुझे दिया, फिर से जीने का अधिकार,  
इस पाषाण को मिल गया, आज फिर से एक संसार।  
मैं चली अब उस मार्ग पर, जहाँ सत्य की ही ज्योति है,  
तुम्हारी धूलि मेरे लिए, अब अनमोल एक मोती है।

मैं लिखता हूँ वह शीश झुकाना, जो सती ने किया वहाँ,  
जिसकी गरिमा को देख स्वयं, झुक गया था यह आसमाँ।  
रघुकुल के उस दीप ने भी, दिया उन्हें सम्मान वही,  
सृष्टि ने फिर से सुनी, एक नारी की मुस्कान वही।

मेरी लेखनी इस विदाई को, करुण—मधुर बनाती है,  
अहिल्या की मुक्ति गाथा, जग को आज सुनाती है।  
विदा हुए श्रीराम आगे, वन के उस दुर्गम पथ पर,  
छोड़ गए वह अमिट छाप, उस सूने पाषाण तट पर।



## ॥ आश्रम का नव—श्रृंगार और प्रकृति का हर्ष ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब आश्रम का वह रूप नया,  
जहाँ कल तक था सन्नाटा, वहाँ वसंत है लौट गया।  
सूखे वृक्षों पर कोमल, नव—पल्लव फिर से आए हैं,  
भौरों ने भी कलियों पर, मधु—गीत प्रेम के गाये हैं।

सरयू की लहरें भी जैसे, हर्षित होकर नाच रही,  
अहिल्या की पावनता को, अपनी लहरों से जाँच रही।  
मृग—शावक भी निर्भय होकर, कुटिया के पास आए हैं,  
देवों ने भी स्वर्ग से, अब पुष्प—वृष्टि बरसाए हैं।

मैं अनुभव करता हूँ वह शुचिता, जो चहुँओर समाई है,  
सत्य की विजय हुई और, अधर्म की शाम आई है।  
जहाँ कभी था ऋषि का कोप, वहाँ अब शांति का वास  
है,  
अहिल्या के इस जागरण में, पूरी सृष्टि का उल्लास है।

मेरी कविता इन रंगों को, शब्दों में अब ढाल रही,  
एक सती के जीवन की, हर कड़वाहट को निकाल रही।  
आश्रम फिर से तीर्थ बना, फिर गूँजे वहाँ वेद—स्वर,  
मुक्त हुई है आज धरा, उस भीषण पाषाण—भार भर।



## ॥ आत्म-बोध और भविष्य का संकल्प ॥

---

अब अहिल्या खड़ी थी अपने, उस नए व्यक्तित्व के साथ,  
न था भय समाज का कोई, न था कोई मिथ्या हाथ।  
मैं **संजीव**, देख रहा हूँ उसके, मस्तक का वह तेज प्रखर,  
जो कहता है—‘स्त्री का आत्मबल, होता है सबसे ऊपर’।

मैं केवल पत्नी नहीं, मैं स्वयं में एक सत्य हूँ,  
शाप और वरदान से परे, मैं अखंड एक घनत्व हूँ।  
पाषाण बनी तो धैर्य सीखा, नारी बनी तो बोध मिला,  
नियति के उस क्रूर खेल में, मुझे आत्म-शोध मिला।

मैं लिखता हूँ वह संकल्प, जो आने वाले युगों का है,  
यह संघर्ष केवल एक नहीं, यह कई-कई युगों का है।  
अहिल्या की यह कथा अब, नारी को बल प्रदान करे,  
जो मौन रहकर भी अधर्म का, पल-पल संहार करे।

मेरी चेतना इस शिखर पर, थोड़ा गर्व महसूस करे,  
**‘पंच प्रभा’** की पहली रश्मि, सबका संताप दूर करे।  
अभी पाँच शीर्षकों का सफर, इस सर्ग में शेष है,  
अहिल्या के इस महा-काव्य का, अभी अद्भुत परिवेश है।





## ॥ गौतम का प्रत्यागमन और हृदय का मिलन ॥

---

मैं **संजीव**, साक्षी हूँ अब उस, घड़ी के पावन संगम का,  
जब अंत हुआ सदियों पुराने, उस असहनीय से भ्रम का।  
गौतम ऋषि लौटे आश्रम में, लेकर आँखों में पश्चाताप,  
धूल चुका था हृदय का संशय, मिट चुका था भीषण शाप।

देखा जब अहिल्या को सम्मुख, कंचन सी काया लेकर,  
खड़े रह गए मौन मुनिवर, अपना सब कुछ खो—देकर।  
बोले—देवि! अपराध मेरा था, जो मैंने धीरज त्याग दिया,  
एक कपट के कारण मैंने, तुझको पाषाण बना दिया।

मैं लिखता हूँ वह करुण दृश्य, जब ऋषि चरणों में झुकने  
लगे,  
अहिल्या ने तब हाथ थाम, उनके सब आँसू रोकने लगे।  
स्वामी! आप न दोषी हैं, यह तो विधि का ही विधान था,  
मेरे धैर्य की परीक्षा का, शायद यही एक मैदान था।

मेरी लेखनी इस मिलन को, वंदन वारंवार करे,  
जहाँ प्रेम और क्षमा मिलकर, सृष्टि का उद्धार करे।  
आज मिला है न्याय सती को, ऋषि का भी मन शुद्ध हुआ,  
इतने युगों का वह वियोग, अब अंततः समृद्ध हुआ।



## ॥ समाज का संशय और अहिल्या का उत्तर ॥

---

किन्तु खड़ा था दूर कहीं, यह संशयी समाज खड़ा,  
जिसकी नजरों में नारी का, चरित्र ही बस था पड़ा।  
मैं **संजीव**, सुन रहा हूँ वह, दबे-पाँव जो कहते थे,  
कलंक और अपवित्रता के, जो विष-नद में बहते थे।

क्या स्वीकारेगा यह जग, उसे जो पाषाण हो आई थी?  
क्या देह की उस शुचिता की, कोई गवाही लाई थी?  
तब अहिल्या उठी गरजकर, जैसे कोई ज्वाला हो,  
जैसे घने अँधेरे में, कोई प्रखर उजियाला हो।

बोली वह—सुन लो ओ दुनिया! मेरी अग्नि देह नहीं,  
मेरी आत्मा पावन है, इसमें कोई संदेह नहीं।  
अग्नि—परीक्षा तुम क्या लोगे? मैं पत्थर होकर जी आई,  
अपमानों के हलाहल को, मैं अमृत समझकर पी आई।

मैं लिखता हूँ वह दहाड़, जो रूढ़ियों को तोड़ रही,  
एक नई मर्यादा से, अब जग का मुख मोड़ रही।  
सती का गौरव देह नहीं, उसका पावन संकल्प है,  
स्त्री के स्वाभिमान का, अब न कोई अन्य विकल्प है।



## ॥ पंचकन्या की प्रथम ज्योति का तेज ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, इस प्रभा का प्रथम स्वरूप,  
अहिल्या बन गई आज, नारी-शक्ति का दिव्य अनूप।  
पाँच ज्योतियों में पहली, यह रश्मि बड़ी निराली है,  
जिसने अपने तप से सींची, यह जग की खाली डाली है।

जो पत्थर होकर जाग सके, वह क्या नहीं कर सकती है?  
वह काल के क्रूर प्रहारों को, हँसकर भी सह सकती है।  
प्रथम सर्ग की यह अधिष्ठात्री, गौरव का एक मानक है,  
अहिल्या का यह जीवन-दर्शन, अब सबका पथ-चालक है।

मैंने पिरोया शब्दों में, उसकी आँखों का वह पानी,  
जो आज बन गई है युग-युग की, एक अमर कहानी।  
**‘पंच प्रभा’** का यह पहला सोपान, यहाँ अब ठहर रहा,  
पर सती का वह तेज पुंज, अब रग-रग में है लहर रहा।

मेरी चेतना ने पाया है, इस कथा से वह आधार,  
जो अन्याय के विरुद्ध खड़ा, कर देता है प्रतिकार।  
अब दो शीर्षक शेष रहे, इस प्रथम सर्ग के समापन में,  
अहिल्या की गाथा अंकित है, अब जन-जन के मन में।



## ॥ सतीत्व का शाश्वत संदेश ॥

---

मैं **संजीव**, समेट रहा हूँ अब इस प्रथम सर्ग का सार,  
अहिल्या ने जो दिया जगत को, वह अनुपम उपहार।  
उसने सिखाया—मौन रहना, केवल कायरता नहीं,  
पत्थर होकर जीना भी, कोई साधारण बात नहीं।

वह कहती है—ओ नारी! तू स्वयं अपनी रक्षक बनना,  
अपमानों की भट्टी में, तपकर तू ही कंचन बनना।  
समाज तुझे पत्थर समझे, या शापों से घेरे रखे,  
तू अपनी अंतरात्मा की, ज्योति को बस फेरे रखे।

मैं लिखता हूँ वह शक्ति, जो जड़ता को भी काट सके,  
जो अपनी गरिमा के बल पर, सारा अंबर बाँट सके।  
अहिल्या का यह रूप आज, हर पीड़ित की आशा है,  
यही तो मेरे इस महाकाव्य की, पावन परिभाषा है।

न देह अशुद्ध होती है, न मन कभी मैला होता,  
पवित्र वही है जिसका संकल्प, न कभी अकेला होता।  
प्रथम प्रभा ने देख लिया, अब नया एक विहान यहाँ,  
जहाँ स्त्री के स्वाभिमान का, होता है सम्मान यहाँ।

## ॥ उपसंहार और कुन्ती की पदचाप ॥

यहाँ पूर्ण हुई वह गाथा, जो पाषाण से प्रारंभ हुई,  
सती अहिल्या की वह ज्योति, अब जन—मन में व्याप्त हुई।  
मैंने 'पंच—प्रभा' के इस सर्ग में, शब्दों के दीप जलाए हैं,  
अहिल्या के पावन चरणों में, श्रद्धा—पुष्प चढ़ाए हैं।

पर 'पंच प्रभा' की यात्रा का, यह तो बस एक द्वार है,  
अभी चार और महा—ज्योतियों का, मुझ पर बड़ा उधार है।  
अब मेरी लेखनी बढ़ रही, उस कुन्ती की पीड़ा की ओर,  
जिसने जीवन भर झेला है, नियति का वह क्रूर मरोड़।

अगले सर्ग में देखूँगा मैं, उस माता का भीषण रण,  
जिसने लोक—लाज की खातिर, किया था सुत का  
विसर्जन।

हस्तिनापुर की गलियों में, जो कुन्ती बनकर आई थी,  
अपने हृदय के टुकड़ों को, जो आँचों में तपलाई थी।

अहिल्या ने दी मुक्ति हमें, अब कुन्ती धीरज देगी,  
संघर्षों के तूफानों में, वह पतवार अब लेगी।  
प्रथम सर्ग को विराम दे, अब द्वितीय की ओर बढ़ता हूँ,  
मैं **संजीव**, अपनी आत्मा से, नया **महाकाव्य** गढ़ता हूँ।



## द्वितीय सर्ग मातृत्व और महासंग्राम (कुन्ती)

---





## ॥ कुन्ती का अंतर्द्वंद और अतीत की आहट ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, हस्तिनापुर के प्रांगण में,  
जहाँ द्वंद्व मच रहा है आज, महामाता के अंतर्मन में।  
अहिल्या की जड़ता देखी, अब कुन्ती का संताप लिखूँ,  
एक माँ के हृदय में छुपते, युग—युग का वह पाप लिखूँ।

वह राजमाता थी लेकिन, भीतर से बड़ी अकेली थी,  
नियति के क्रूर हाथों की, वह बनी हुई एक पहेली थी।  
सूर्य—पुत्र को जल में छोड़ा, वह घाव अभी भी ताजा है,  
लोक—लाज की उस दीवार का, कड़वा एक दरवाजा है।

मैं देख रहा हूँ कुन्ती को, जो मौन खड़ी थर्राती है,  
अतीत की परछाई जब भी, सम्मुख उसके आती है।  
पाँच पांडवों की जननी वह, पर एक का सच वह जानती,  
अपने ही सुत को जग के आगे, सुत न अपना मानती।

मेरी लेखनी अब उतरेगी, उस मर्मस्थल की गहराई में,  
जहाँ ममता सिसक रही है, सत्ता की परछाई में।  
**‘पंच प्रभा’** की दूजी ज्योति, कुन्ती अब प्रज्वलित हुई,  
मेरे शब्दों की शक्ति से, वह व्यथा आज संकलित हुई।

## ॥ दुर्वासा का आगमन और वरदान का बीज ॥

मैं संजीव, देख रहा हूँ कुन्ती का वह बाल्य—स्वरूप,  
कुन्तीभोज के राजमहल में, खिली हुई सी सुनहरी धूप।  
क्रोध—ऋषि दुर्वासा आए, आतिथ्य प्रेम की परीक्षा को,  
कुन्ती की सेवा ने बदला, मुनि की उस तीक्ष्ण समीक्षा को।

शांत हुए मुनि देख समर्पण, दिया एक अमोघ विधान,  
पुत्री! जिस देव को तू ध्याएगी, वही बनेगा तेरा मान।  
मंत्र पढ़ते ही देव—पुत्र, तेरी गोदी में आएगा,  
तेरा यह सेवा—भाव जगत में, अमिट यश ही पाएगा।

मैं लिखता हूँ वह मंत्र जो, भविष्य की आधारशिला थी,  
पर भोली कुन्ती क्या जाने, वह नियति की एक लीला थी।  
वरदान मिला पर साथ में आई, एक अनजानी सी  
व्याकुलता,  
बाल—मन में जाग उठी, वह तीव्र और चंचल आतुरता।

वह मंत्र नहीं था, वह तो था—महाभारत का प्रथम बीज,  
जिसने बो दी थी अनजाने, महाविनाश की गहरी चीज।  
मेरी लेखनी इस वरदान को, शंका से भी देख रही,  
एक अबोध के हाथों में, विधाता क्या है रेखा खींच रही?



## ॥ कौतूहल का क्षण और सूर्य का आवाहन ॥

भोर भई और खिली धूप थी, गंगा की पावन लहरों पर,  
कुन्ती खड़ी थी सोच रही, उन मंत्रों के गहरे पहरो पर।  
मैं **संजीव**, महसूस करूँ वह, बाल-सुलभ सी एक  
चपलता,  
सत्य को जाँचने की वह इच्छा, और मन की तीव्र  
विकलता।

क्या सच में देव उतरेंगे? उसने सूर्य की ओर निहारा,  
पढ़ा मंत्र और काँप उठा, तब जल का हर एक किनारा।  
आसमान से उतरा एक, प्रचण्ड तेज का स्वर्ण-रथ,  
छोड़कर अपना दिव्य लोक, और अपना वह शाश्वत पथ।

सूर्य देव सम्मुख खड़े थे, देख कुन्ती घबराई थी,  
उसने तो बस खेल-खेल में, अपनी शक्ति आजमाई थी।  
हे देवी! मैं आ पहुँचा हूँ, तेरा मंत्र व्यर्थ न जाएगा,  
तेरी कोख से आज मेरा, तेजस्वी अंश ही आएगा।

मैं लिखता हूँ वह दृश्य जहाँ, भय और विस्मय का संगम  
था,  
एक क्षण की उस भूल में छुपा, सदियों का अब गम था।  
कौतूहल अब बन गया था, मर्यादा की एक कठिन डगर,  
अन्धकार अब छाने वाला था, उस सुनहरी सुबह पर।



## ॥ कौमार्य का संकट और कर्ण का प्रादुर्भाव ॥

---

मैं **संजीव**, अब लिखता हूँ वह, पीड़ा जो कहीं छुपती नहीं,  
ममता की वह धारा है जो, बाधाओं से रुकती नहीं।  
कुन्ती का वह अंतर्मन अब, सामाजिक भय से काँप रहा,  
एक कुंवारी माँ का दुख, यह निर्दयी जग था नाप रहा।

जन्मा सुत वह दिव्य रूप, जिसके तन पर स्वर्ण—कवच  
था,  
कानों में कुण्डल चमक रहे, वह सूर्य का ही तो सच था।  
पर वह शिशु हर्ष नहीं लाया, वह लाया एक भीषण त्रास,  
कैसा यह मातृत्व कि जिसका, हुआ न जग में तनिक  
विकास।

मैं देख रहा हूँ उस माँ को, जो सुत को देख सिहरती है,  
लोक—लाज के खौफ से वह, पल—पल भीतर मरती है।  
जिस बच्चे को गोदी लेकर, उसे विश्व को दिखाना था,  
आज उसी को जग की नजरों से, सबसे दूर छुपाना था।

कैसी विडंबना है जग की, यह पुरुष—प्रधान विधान यहाँ,  
एक माँ के पावन प्रेम का, होता क्यों अपमान यहाँ?  
मेरी कलम सिसकती है अब, इस विवशता को गाते हुए,  
एक पुत्र को उसकी जननी से, पल में दूर भगाते हुए।

## ॥ मंजूषा का सफर और सुत का विसर्जन ॥

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस, गंगा के निर्जन तट पर,  
जहाँ एक माँ ने लिखा स्वयं, दुख का अध्याय अमिट पट  
पर।

काष्ठ की एक पेटी बनाई, रेशम का उसमें बिछौना था,  
जिसमें लेटा वह बालक, जैसे कोई सलोना खिलौना था।

थर—थर काँप रहे थे हाथ, और आँखों में सावन था,  
एक तरफ था जग का भय, और एक तरफ सुत पावन  
था।

धकेला जब उस मंजूषा को, माँ का हृदय भी साथ बहा,  
अभागा वह सुत लहरों में, माँ—माँ कहता बह चला।

क्षमा करना ओ सुत मेरे! मैं तुझको पाल न पाऊँगी,  
इस समाज की काली नजरों से, मैं कभी न बच पाऊँगी।  
मैं लिखता हूँ वह लहरों का, क्रूर और धीमा स्वर वहाँ,  
अहिल्या पत्थर बनी थी, कुन्ती पत्थर हुई थी यहाँ।

वह बहता हुआ स्वर्ण—अंश, अब काल की गर्त में खो गया,  
सूर्य का वह तेज—पुंज, अब सूत—पुत्र का हो गया।  
ममता हारी, मर्यादा जीती, पर मानवता हार गई,  
कुन्ती की वह पहली पीड़ा, जीवन भर को मार गई।



## ॥ पश्चात्ताप की अग्नि और नियति का नया मोड़ ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ वह, महल की ऊँची दीवारें,  
जहाँ कुन्ती अब ढूँढ रही है, अपने सुख की पतवारें।  
पर वह रुदन जो गंगा में था, अब भी कानों में बजता है,  
अतीत का वह घाव हृदय में, रह-रह कर अब सजता है।

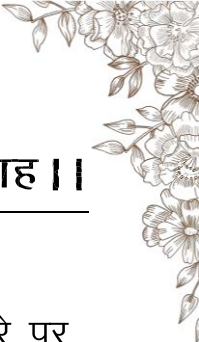
बीते वर्ष और आया समय, जब पाण्डु की वह बनी वधू,  
जीवन में फिर घोलने चली, वह मधुर-मिलन का थोड़ा  
मधु।

पर नियति ने फिर खेल खेला, राजा को जब शाप मिला,  
पुत्र-सुख की राह में फिर, संकट का एक पहाड़ खिला।

मैं लिखता हूँ वह पल जब फिर, वह मंत्र काम में आया  
था,

पाँच पुत्रों का वरदान लेकर, कुन्ती ने कुल बढ़ाया था।  
धर्म, वायु और इन्द्र देव से, जन्मे पाण्डव वीर यहाँ,  
पर उस ज्येष्ठ सुत की यादों ने, माँ को दिया न धीर यहाँ।

भीतर एक समुद्र छुपा था, बाहर राजसी ठाठ रहा,  
कुन्ती का यह जीवन जैसे, कांटों का ही एक घाट रहा।  
**‘पंच प्रभा’** की यह गाथा अब, युद्ध की ओर मुड़ती है,  
अतीत की उस पुरानी गांठ से, वर्तमान अब जुड़ती है।



## ॥ पाण्डु का प्रयाण और माद्री का आत्मदाह ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस, वन के शांत किनारे पर,  
जहाँ वज्रपात हुआ है आकर, कुंती के सहारे पर।  
शाप—वश महाराज पाण्डु ने, देह अपनी त्याग दी,  
बुझ गई जो ज्योति महल की, वन में भीषण आग दी।

माद्री भी सती हुई साथ में, सुत सौँपे कुंती के हाथ,  
दीदी! अब तुम ही सम्भालना, इन पाँचों का पावन साथ।  
मैं लिखता हूँ वह रुदन जिसे, सुन वन के पशु भी रोए  
थे,  
कुंती ने अपने जीवन के, सब सुख उस दिन खोए थे।

पाँच अनाथ बालकों को ले, वह विवश खड़ी एकाकी थी,  
भाग्य की उस क्रूर खेल की, अब भी बहुत कुछ बाकी थी।  
हृदय में पति का शोक था और, बच्चों के कल की चिंता,  
ममता की उस कठिन डगर पर, अब वह थी दुःख की  
संता।

मैं अपनी कलम से लिखता हूँ, उस नारी का साहस महान,  
जिसने आंसुओं को पीकर भी, रखा मातृत्व का मान।  
वन का वह सन्नाटा अब, एक नई हुंकार भरेगा,  
हस्तिनापुर के द्वारे पर, अब कुंती का पैर पड़ेगा।

## ॥ हस्तिनापुर आगमन और राजमहल का शीत-युद्ध ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, कुरुवंश का वह राजद्वार,  
जहाँ द्वेष की अग्नि सुलग रही, छुपाए मन में गहरा वार।  
कुंती लौटी सुत संग अपने, न्याय की एक आस लिए,  
पर धृतराष्ट्र की आँखों में, स्वार्थों के थे वास जिए।

कौरव बालकों के मन में, ईर्ष्या का एक विष घुला,  
पांडव थे अधिकार मांगने, पर द्वार नहीं था कोई खुला।  
मैं लिखता हूँ वह सभा जहाँ, गांधारी ने हाथ थामा,  
दो माताओं के मिलन में, शुरू हुआ एक नया ड्रामा।

भीष्म पितामह खड़े मौन थे, देख रहे थे वंश का हाल,  
विदुर जानते थे कि बिछने, वाला है अब गहरा जाल।  
कुंती ने चुपचाप सहा वह, सौतेलेपन का व्यवहार,  
अपने बच्चों के रक्षण हेतु, बनी रही वह एक दीवार।

राजमहल की उन गलियों में, षड्यंत्रों की गूँज रही,  
कुंती अपने बच्चों का सुख, उन काँटों में ढूँढ़ रही।  
मेरी लेखनी इस संघर्ष को, अब शब्दों का रूप देगी,  
सत्ता के उस खेल में माँ, कैसे अपनी जान देगी?

## ॥ लाक्षागृह का षड्यंत्र और भयानक रात ॥

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, वारणावत के उस भवन, जहाँ लाक (लाख) की दीवारों में, छुपा हुआ था काल गहन।

दुर्योधन ने जाल बुना था, पांडव जलकर राख बनें, कुंती के वे पाँचों तारे, बुझकर बस एक खाक बनें।

भवन के भीतर गंध घुली थी, घी और लाख के तेलों की, मैं लिखता हूँ वह खौफनाक, रात नीच के खेलों की। पर विदुर की वह गुप्त सूचना, सुरंग का वह द्वार खुला, मौत खड़ी थी द्वारे पर पर, जीवन का आधार खुला।

आग लगी जब उस महल में, नभ तक गई ज्वाला प्रचंड, दुनिया ने समझा कि जल गए, पांडव वे अति वीर मार्तण्ड। पर मैं देख रहा हूँ कुंती को, जो बेटों का हाथ पकड़े, अँधियारी उस सुरंग के भीतर, हिम्मत से है काल जकड़े।

वह माँ नहीं थी, वह तो थी—एक ढाल प्रलय के आगे, जिसके संकल्पों के डर से, मृत्यु के भी पाँव भागे। लाक्षागृह की राख ने दी थी, एक नई पहचान वहाँ, कुंती का वह दृढ़ निश्चय, आज बना भगवान वहाँ।



## ॥ चक्रनगरी का वास और भीम का बल ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, एक ब्राह्मण की छोटी कुटिया,  
जहाँ छुपकर दिन काट रही, वह राजपुत्री और  
सुत-बिटिया।

एकचक्रा की उन गलियों में, दुःख का एक साया था,  
बकासुर नामक दानव ने, सबको बड़ा डराया था।

ब्राह्मण परिवार रो रहा था, अपनी बारी आने पर,  
कुंती ने भीम को भेजा तब, संकट दूर भगाने पर।  
जाओ सुत! इस संकट से, ब्राह्मण कुल को मुक्त करो,  
अन्याय के उस दानव का, आज स्वयं तुम अंत करो।

मैं लिखता हूँ वह त्याग जहाँ, माँ ने निज सुत को भेजा,  
परोपकार की खातिर जिसने, पत्थर कर लिया कलेजा।  
भीम ने मारा उस दैत्य को, नगर में छाई खुशहाली,  
कुंती की उस करुणा ने, भर दी सबकी झोली खाली।

एक तरफ अपनी रक्षा थी, एक तरफ था धर्म खड़ा,  
कुंती का वह सेवा-भाव, सबसे था उस रोज बड़ा।  
मेरी कविता इस त्याग को, युग-युग तक अब गाएगी,  
राजमाता की ममता कैसे, जन-जन को अपनाएगी?





## ॥ द्रौपदी स्वयंवर और माँ का अनजाना आदेश ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, पांचाल देश के मंडप में,  
जहाँ लक्ष्य को भेदा पार्थ ने, एक अनोखे संकल्प में।  
द्रौपदी को जीत कर लाए, कुटिया के उस द्वार पर,  
हर्ष में डूब रहा था सबका, कोमल से संसार पर।

माँ भीतर थी, सुत बोले—देखो माँ! हम क्या लाए?  
बिना देखे ही कुंती ने, शब्द वचन के ये गाये—  
जो भी लाए हो तुम सुत! पाँचों मिलकर बाँट लो,  
आपस के इस प्रेम से ही, तुम हर बाधा को काट लो।

मैं लिखता हूँ वह सन्नाटा, जो उन शब्दों के बाद हुआ,  
एक वचन से पाँचों का, जीवन अब आबाद—विषाद हुआ।  
द्रौपदी बनी वधू पाँचों की, नियति का यह कैसा मोड़?  
कुंती के उस एक शब्द ने, दिया धर्म का बंधन जोड़।

क्या वह अनजानी भूल थी? या कोई दैवीय खेल था?  
मेरी लेखनी पूछ रही—क्या यह ममता का मेल था?  
**‘पंच प्रभा’** की दूसरी रश्मि, अब और प्रखर हो जाती है,  
कुंती अपने ही वचनों में, अब स्वयं उलझ सी जाती है।



## ॥ इंद्रप्रस्थ का वैभव और मय— सभा का सम्मोहन ॥

---

मैं संजीव, देख रहा हूँ अब खांडव का वह नव—श्रृंगार,  
जहाँ मय दानव ने रच डाला, अद्भुत स्वर्ग जैसा संसार।  
इंद्रप्रस्थ की स्वर्ण आभा, दिशाओं को चमकाती थी,  
और कुंती की आँखों में अब, थोड़ी शांति आती थी।

पांडव अपनी भुजाओं से, साम्राज्य बढ़ाते जाते थे,  
विजयादशमी के उत्सव, महलों में अब छाते थे।  
मैं लिखता हूँ वह वैभव, जिसमें माँ का भी मान बढ़ा,  
दुख के काले बादलों पर, सुख का एक विहान चढ़ा।

पर ईष्या की वह दबी आग, कुरुक्षेत्र में जलती थी,  
शकुनि की वह कपटी बुद्धि, पल—पल चालें चलती थी।  
मैं देख रहा हूँ कुंती को, जो सुख में भी संशक्त है,  
सत्ता के इस चकाचौंध से, माँ का हृदय अब चकित है।

वह जानती है—शांति के पीछे, कोई बड़ा बवंडर है,  
राजमहल की दीवारों में, षड्यंत्रों का समंदर है।  
मेरी लेखनी इस वैभव को, केवल एक पड़ाव कहे,  
असली परीक्षा तो अब है, जो इतिहास की धारा सहे।

## ॥ क्रीड़ा का आमंत्रण और माँ की आशंका ॥

बुलावा आया ज्येष्ठ तात का, पाँसे अब फेंके जाएँगे,  
कपट के चौपड़ पर अब, भाई ही भाई को खाएँगे।  
मैं **संजीव**, खड़ा हूँ उस द्वार पर, जहाँ से पांडव निकले  
थे,  
कुंती के वे पाँचों सुत, जो धर्म—राह पर टिके थे।

माँ का मन कह रहा था—पुत्रों! मत जाओ उस सभा में,  
जहाँ विष के बीज बोए हैं, हस्तिनापुर की हवा में।  
पर मर्यादा और धर्म के, बंधनों में वे जकड़े थे,  
शकुनि के उन पाँसों के, फंदे बहुत ही तगड़े थे।

मैं लिखता हूँ वह अंतिम विदा, जो कुंती ने दी थी उन्हें,  
काँप रहे थे अधर माँ के, कैसे रोकती वह भला उन्हें?  
एक तरफ थी कुल की आज्ञा, एक तरफ था अनिष्ट का  
डर,  
कुंती ने बस मौन रहकर, झुका लिया अपना वह सर।

वह रात बड़ी लंबी थी, जो जुए की मेज पर बीत रही,  
अधर्म की वह काली शक्ति, धर्म के ऊपर जीत रही।  
मेरी कविता उस सन्नाटे को, चीर कर अब बोलेगी,  
सत्ता के उन जुआरियों की, पोल अब वह खोलेगी।



## ॥ वनवास का प्रस्थान और माँ का बिछोह ॥

---

मैं **संजीव**, नहीं देख सकता, वह दृश्य जो वहाँ घटा,  
जहाँ मर्यादा का अंबर, तार-तार होकर फटा।  
कुलवधू को घसीटा गया, भरी सभा के बीच वहाँ,  
और कुंती अपने कक्ष में, कर रही थी करुण आह।

पाँच सुत थे वीर महान, पर जुए के दाँव पर हारे थे,  
वे शब्द दुशासन के तीखे, माँ के कलेजे पर आरे थे।  
कहाँ गई वह राजमाता? कहाँ गए वे शूरवीर?  
कुंती की आँखों से बहता, अब अविरल वह अश्रु-नीर।

एक नारी का मान लुटा, और पूरा वंश खड़ा रहा,  
मौन रहे सब भीष्म-द्रोण, अधर्म का पलड़ा बढ़ा रहा।  
मैं लिखता हूँ वह तड़प जहाँ, कुंती स्वयं को कोस रही,  
अपने ही दिए वचनों की, वह आग भीतर सोख रही।

वह पीड़ा केवल द्रौपदी की नहीं, वह कुंती की भी थी,  
एक माँ के सामने उसकी, बहु की गरिमा जा रही थी।  
मेरी लेखनी इस अन्याय पर, अब खून के आँसू रोती है,  
जब सत्ता अपनी आँखों की, शर्म और हया को खोती है।



## ॥ वनवास का प्रस्थान और माँ का बिछोह ॥

---

हारे पांडव सब कुछ अपना, अब वन के पथ पर राही हैं,  
वे राजकुंवर जो कल तक थे, अब दुखों के सिपाही हैं।  
मैं **संजीव**, देख रहा हूँ वह, मार्मिक बिछोह का क्षण,  
जब बेटों से दूर हुई माँ, लेकर आँखों में करुण मन।

कुंती नहीं गई वन में, वह विदुर के घर पर ठहरी थी,  
क्योंकि बेटों की सुरक्षा की, चिन्ता बहुत ही गहरी थी।  
विदुर-पत्नी के संग बैठकर, वह दिन-रात गुजारती थी,  
अपने पाँचों नक्षत्रों की, वह मन ही मन आरती गाती थी।

हे देव! रक्षा करना उनकी, जो कंद-मूल अब खाएँगे,  
महलों के वे राजकुमार, अब काँटों पर सो जाएँगे।  
मैं लिखता हूँ वह विरह जो, बारह वर्षों तक चला,  
कुंती की उस ममता का, अब हृदय-कुण्ड में हुआ भला।

एक माँ जो महलों में थी, पर मन उसका वन में था,  
धृतराष्ट्र के अन्याय का, जहर भरा उसके तन में था।  
मेरी कविता इस तपस्या को, अब शब्दों में ढाल रही,  
कुंती अपने धैर्य से अब, विनाश का पल टाल रही।



## ॥ अज्ञातवास की समाप्ति और युद्ध की दुंदुभी ॥

---

बीत गया वह अज्ञातवास, अब अधिकार का समय आया,  
पर कौरवों ने शांति का, हर एक मार्ग टुकराया ।  
मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, संधि—प्रस्ताव के विफल होने  
पर,  
जहाँ नियति मुस्कुरा रही है, महाविनाश के होने पर ।

कृष्ण आए संदेश लेकर, पर दुर्योधन न माना था,  
उसने तो बस पांडवों को, युद्ध में ही ठाना था ।  
कुंती ने तब संदेश भेजा—पुत्रों! अब शस्त्र उठाओ तुम,  
क्षत्रिय होने का धर्म अपना, दुनिया को अब दिखाओ तुम ।

वह समय आ गया है जिसके लिए, क्षत्राणी सुत जनती  
है,  
अन्याय के आगे जो न झुके, वही असली माँ बनती है ।  
मैं लिखता हूँ वह हुंकार, जो कुंती की वाणी में थी,  
युद्ध की वह पहली ज्वाला, उसी की एक कहानी में थी ।

माँ ने कह दिया—अब शांति नहीं, अब केवल रण होगा,  
अधर्म के उस घोर वृक्ष का, अब समूल दलन होगा ।  
**‘पंच प्रभा’** की यह ज्योति अब, विकराल रूप दिखाती  
है,  
शांति की वह देवी अब, चंडी बन मुस्कुराती है ।



## ॥ गंगा तट पर कर्ण-कुंती मिलन ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस, संध्या की ढलती लाली में,  
जहाँ एक माँ आई है मिलने, सुत से घोर बदहाली में।  
गंगा तट पर कर्ण खड़ा था, अर्घ्य सूर्य को दे रहा,  
अपने जन्म के उस रहस्य का, शायद उत्तर ले रहा।

कुंती बोली-पुत्र! तू सूत नहीं, तू कौन्तेय है, ज्येष्ठ है,  
मेरे उन पाँचों पांडवों में, तू ही सबसे श्रेष्ठ है।  
सूर्य का तू अंश है सुत, चल पांडव पक्ष में आ जा तू  
अपनी माँ की सूनी गोदी, फिर से आज सजा जा तू।

मैं लिखता हूँ वह मौन जो, कर्ण की आँखों में उतरा था,  
सत्य जानकर भी उसका, स्वाभिमान न बिखरा था।  
देर कर दी आने में माँ! अब मैं राधेय ही कहलाऊँगा,  
दुर्योधन के ऋण को मैं, अब रण में ही चुकाऊँगा।

मेरी लेखनी कांपती है, इस माँ और सुत के द्वंद्व पर,  
जहाँ प्रेम और कर्तव्य खड़े, मृत्यु के उस छंद पर।  
वचन दिया कर्ण ने-माँ! तेरे पाँच पुत्र ही रहेंगे,  
या तो अर्जुन रहेगा जग में, या हम रण में ढहेंगे।



## ॥ कुरुक्षेत्र का महाविनाश और ज्येष्ठ सुत का पतन ॥

---

मैं संजीव, साक्षी हूँ अब उस, अठारह दिन के महा—रण  
का,  
जहाँ लहू से तर्पण हो रहा, हर एक शूरवीर के तन का ।  
चलीं तलवारें, टूटे रथ, और बिछ गई वीरों की लाशें,  
कुंती देख रही थी जलती, अपने ही कुल की आशाएं ।

अंततः वह क्षण आया जब, कर्ण भूमि पर गिरा पड़ा,  
अर्जुन के बाणों ने तोड़ा, वह कवच—कुण्डल का घड़ा ।  
पांडव हर्षित थे जीत पर, पर कुंती का हृदय फटा,  
दौड़ पड़ी वह रणभूमि में, लेकर दुख की घनी घटा ।

मेरा ज्येष्ठ सुत मर गया! यह चीख हवा में गूँज उठी,  
पांडवों की उस जीत की, हर एक उमंग अब टूट पड़ी ।  
मैं लिखता हूँ वह करुण दृश्य, जब माँ ने सत्य खोला था,  
जिस सुत को कल तक शत्रु कहा, उसे अपना ज्येष्ठ बोला  
था ।

युधिष्ठिर का वह क्रोध और, अर्जुन का वह पश्चाताप,  
कुंती के उस एक सत्य ने, दिया कुल को भारी शाप ।  
मेरी कविता इस रुदन को, इतिहास का सबसे बड़ा घाव  
कहे,  
जहाँ माँ की विवशता की धारा, अपनों के ही विरुद्ध बहे ।



## ॥ विजय का फीका उत्सव और श्राप का भार ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, हस्तिनापुर का राज—सिंहासन,  
पर विजय की उस चमक के पीछे, है गहरा एक अवसादन।

युधिष्ठिर राजा बने मगर, मन में कर्ण का चेहरा था,  
कुंती की उस चुप्पी का, दंड बड़ा ही गहरा था।

नारी कभी न छुपा सकेगी, अब मन का कोई गूढ़ रहस्य,  
श्राप दिया धर्मराज ने, होकर अत्यंत ही विवश—सदस्य।  
कुंती मौन खड़ी सुनती रही, उस दंड को जो उसने पाया,  
राजमाता तो बनी मगर, सुत—शोक ने उसे घेरा—काया।

मैं लिखता हूँ वह एकांत जहाँ, कुंती अब भी रोती है,  
अपने ही पुत्रों की यादों को, आँखों के जल से धोती है।  
सत्ता मिली, सम्मान मिला, पर माँ का आँचल सूना था,  
कर्ण के बिना वह वैभव, उसे लगता अब दूना था।

**‘पंच प्रभा’** की दूसरी रश्मि, अब वैराग्य की ओर बढ़ी,  
संसार के इस शोर से ऊपर, एक त्याग की नई कड़ी।  
मेरी लेखनी इस पीड़ा को, अब वंदन वारंवार करे,  
कुंती का यह मातृत्व, हर माँ के हृदय का विस्तार करे।

## ॥ वानप्रस्थ गमन और द्वितीय सर्ग उपसंहार ॥

---

अब समय आ गया था कि, मोह के बंधन तोड़े जाएँ,  
राजमहल के इन सुखों को, पीछे ही अब छोड़े जाएँ।  
मैं **संजीव**, खड़ा हूँ द्वार पर, कुंती जब वन को निकली,  
ममता और कर्तव्य की धारा, अब गंगा बनकर है पिघली।

धृतराष्ट्र और गांधारी की, सेवा का संकल्प लिया,  
राजमाता का वैभव छोड़, तप का उसने मार्ग जिया।  
पांडव रोते रहे द्वार पर, पर माँ ने पीछे मुड़ न देखा,  
लिख दी उसने अपने हाथों, अपनी एक नई जीवन-रेखा।

यहाँ पूर्ण हुई वह गाथा, जो मंत्रों से प्रारंभ हुई,  
कुंती की वह कठिन तपस्या, अब शाश्वत ही व्याप्त हुई।  
**‘पंच प्रभा’** का दूसरा दीप, अब शांत ज्योति फैलाता है,  
एक माँ का संघर्ष हमें, त्याग का पाठ पढ़ाता है।

अब मेरी लेखनी बढ़ेगी, उस अग्निसुता की ज्वाला की  
ओर,  
जिसने बदला था भारत का, पूरा राजनैतिक छोर।  
द्रौपदी! जिसके प्रतिशोध ने, कुरुवंश का नाश किया,  
अगले सर्ग में देखूँगा मैं, उसने कैसे इतिहास जिया।



तृतीय सर्ग  
अग्निशिखा का प्रतिशोध (द्रौपदी)

---



## ॥ यज्ञवेदी से प्राकट्य और प्रथम आभा ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ आज उस, पांचाल की पावन वेदी पर,  
जहाँ अग्नि से जन्मी एक कन्या, काल के उस सुनहरे  
सोपान पर।

द्रुपद के यज्ञ—कुण्ड से जो, ज्वाला बनकर निकली थी,  
वह सुकुमारी नहीं, वह तो नियति की एक नई लेखनी थी।

श्यामल वर्ण, मृगनयनी वह, केशों में जिसके आंधी थी,  
उसकी आभा ने देवताओं की भी, धड़कनें आज बांधी थी।  
मैं लिखता हूँ वह दिव्य रूप, जो शत्रु—नाश का कारण था,  
द्रौपदी का यह जन्म जगत में, अधर्म का निवारण था।

न कोई शैशव, न कोई बचपन, वह पूर्ण युवती बनकर आई,  
अपने साथ वह प्रतिशोध की, भीषण एक कहानी लाई।  
अग्नि की पुत्री थी वह, तो रग—रग में बस आग रही,  
सृष्टि ने देखा—एक नई, चेतना अब तो जाग रही।

मेरी लेखनी इस तेज को, नमन भाव से छूती है,  
अग्निसुता की यह कथा, अब 'पंच प्रभा' में गूँथी है।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, उसके जन्म का राज प्रबल,  
जो कुरुवंश के विनाश हेतु, बनी स्वयं एक अदम्य बल।



## ॥ स्वयंवर की शर्त और मत्स्य-वेध ॥

---

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, पांचाल के उस भारी घेरे में,

जहाँ धनुर्धरों का मेला लगा, राजसी ठाठ के डेरे में।  
मत्स्य की आँख जो बेधेगा, वही कृष्णा का स्वामी होगा,  
यही शर्त थी द्रुपद की, जो इतिहास का अनुगामी होगा।

कर्ण उठा धनु लेने को, पर द्रौपदी ने उसे रोका था,  
सूत-पुत्र को अधिकार नहीं, यह वाणी का एक झोंका था।  
मैं लिखता हूँ वह स्वाभिमान, जो आरम्भ से ही मुखर रहा,  
द्रौपदी का वह निर्णय उस क्षण, सबके दिल पर प्रखर रहा।

तभी विप्र वेश में पार्थ उठे, और तीर धनुष पर साधा था,  
मत्स्य की आँख को भेद दिया, जैसे लक्ष्य ही उनकी राधा  
था।

जयघोष हुआ चहुँओर और, कृष्णा ने वरमाला डाली,  
पर वह नहीं जानती थी कि, विधि ने क्या चाल है चली।

एक वीर को चुना था उसने, पर पाँचों की वह वधू बनी,  
कुंती के एक आदेश से, वह रिश्तों की एक नई धनी।  
मेरी कविता इस मोड़ पर, थोड़ा सा सिहर जाती है,  
एक नारी की किस्मत कैसे, वचनों में उलझ जाती है।

## ॥ हस्तिनापुर में प्रवेश और ईष्या का विष ॥

मैं संजीव, देख रहा हूँ अब, कुरुवंश का वह राजभवन, जहाँ द्रौपदी के आगमन से, हो रहा था ईष्या का हवन। दुर्योधन की आँखों में, खटक रही थी वह सुंदरता, पांडवों का वह नया मान, और कृष्णा की यह प्रखरता।

हस्तिनापुर की गलियों में, जब कृष्णा के पग पड़ते थे, उसकी चाल और ढाल देख, कौरव भीतर ही भीतर मरते थे।

मैं लिखता हूँ वह महल जहाँ, षड्यंत्रों के जाले थे, और शकुनि के पाँसे जैसे, विषधर काले-काले थे।

एक तरफ थी गांधारी, जिसने मीठा सत्कार किया, एक तरफ थी सभा जहाँ, कर्ण ने भी तिरस्कार किया। द्रौपदी खड़ी थी गौरव से, नत न किया उसने मस्तक, पर नियति दे रही थी अब, भारी संकट की दस्तक।

मेरी लेखनी इस द्वेष को, पन्नों पर अंकित करती है, द्रौपदी के उस धीरज में, साहस के रंग भरती है। राजभवन की दीवारें अब, साक्षी बनने वाली थीं, उस लज्जा और उस अपमान की, जो रात आने वाली थी।



## ॥ इंद्रप्रस्थ का निर्माण और मय— सभा का भ्रम ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, अद्भुत मय—सभा के प्रांगण में,  
जहाँ पत्थर जल जैसे दिखते, और भ्रम था हर एक क्षण में।

इंद्रप्रस्थ की वह आभा, देवताओं को लजाती थी,  
द्रौपदी वहाँ की स्वामिनी, सबकी ईष्ठा जगाती थी।

दुर्योधन आया अतिथिवन, पर माया ने उसे भरमाया,  
जहाँ जल था वहाँ थल समझा, और अपना वस्त्र भिगोया।  
ऊपर झरोखे से कृष्णा, वह दृश्य देख मुस्काई थी,  
और मुख से जो वाणी निकली, वह प्रलय की पुरवाई थी।

अंधे का सुत अंधा ही होता, यह शब्द बाण बन के लगे,  
दुर्योधन के घायल मन में, प्रतिशोध के सोए नाग जगे।  
मैं लिखता हूँ वह अट्टहास, जो महाभारत का मूल बना,  
एक नारी का वह व्यंग्य ही, विनाश का अनुकूल बना।

क्या वह मात्र एक हँसी थी, या नियति की कोई चाल थी?  
द्रौपदी की वह मुस्कान ही, उसके लिए एक ढाल थी।  
पर इसी हँसी के बदले में, एक भारी कीमत चुकानी थी,  
**‘पंच प्रभा’** की तीसरी रश्मि, अब संकट में घिर जानी थी।

## ॥ घूत-क्रोड़ा का निमंत्रण और पांडवों की हार ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, वह जुए की काली चौपड़,  
जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर की, बुद्धि हो गई थी अब जड़।  
शकुनि के कपटी पाँसों ने, सारा वैभव छीन लिया,  
पांडवों का मान और, उनका गौरव भी बीन लिया।

राज्य गया और कोश गया, फिर भाइयों को दाँव लगाया,  
अंत में खुद को हार कर, उसने अधर्म का मार्ग सजाया।  
मैं लिखता हूँ वह सन्नाटा, जो उस सभा में छाया था,  
जब शकुनि ने कृष्णा को भी, दाँव पर लगवाया था।

द्रौपदी को भी हार गए! यह सुन सभा अब काँप उठी,  
धर्म और मर्यादा की, हर एक सीमा टूट पड़ी।  
मैं **संजीव**, व्यथित हूँ इस, पुरुष-अहं के खेल पर,  
जहाँ नारी को वस्तु समझा, उस जुए की रेल पर।

अब प्रतिकार का समय था, अब अपमान की बारी थी,  
वह अग्निसुता अब कौरवों के, षड्यंत्रों की मारी थी।  
मेरी कविता इस हार को, एक बड़ी चेतावनी कहती है,  
जहाँ जुआरियों की महफिल में, मानवता रूपी लहू बहती  
है।





## ॥ कृष्णा का आवाहन और दुशासन का दुस्साहस ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस, भरी सभा के द्वार पर,  
जहाँ एक दासी की तरह, खींचा गया कृष्णा को धार पर।  
दुःशासन ने पकड़े वे केश, जो सुगंध से महकते थे,  
और घसीटा उसे वहाँ, जहाँ पापी सब चहकते थे।

कहाँ हैं तेरे वे पति? जो वीर महान कहलाते हैं?  
द्रौपदी के ये तीखे प्रश्न, सबको अब झकझोरते हैं।  
मैं लिखता हूँ वह दृश्य जहाँ, रजस्वला वह नारी थी,  
और कौरवों की नीचता, अब नारी धर्म पर भारी थी।

पाँचों पति मौन खड़े, सिर नीचा किए हुए,  
जैसे अपनी ही मर्दानगी का, जहर वे पिए हुए।  
भीष्म और द्रोण भी, चुपचाप वहाँ पर बैठे थे,  
मर्यादा के रक्षक ही, आज अधर्म में ऐंठे थे।

मेरी लेखनी कांपती है, इस घोर और क्रूर प्रसंग पर,  
जहाँ एक सती का मान टंगा, इस सत्ता के ढंग पर।  
द्रौपदी की वे आँखें अब, अग्नि उगलने वाली थीं,  
कुरुवंश के विनाश की, वह पहली काली दिवाली थी।

## ॥ चीरहरण का महाविनाश और कृष्ण का चमत्कार ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, दुशासन का वह वीभत्स हाथ,  
जो खींच रहा था साड़ी को, छोड़कर अपना सब साथ।  
द्रौपदी ने पुकारा सबको, पर कोई न आगे आया था,  
तब उसने अपने आराध्य, कृष्ण को हृदय से बुलाया था।

हे द्वारिकाधीश! बचा लो, आज लाज इस अबला की,  
भरी सभा में हार रही मैं, बाजी इस दुबला की।  
मैं लिखता हूँ वह चमत्कार, जो अंबर से उतरा था,  
खींचता रहा वह दुष्ट पर, अंबर का थान न उतरा था।

साड़ी का वह ढेर लगा, पर कृष्णा की लाज न गई,  
अधर्म की उस सभा में, धर्म की एक नई जय भई।  
थक कर गिरा दुःशासन नीचे, लहू-लुहान उसके हाथ हुए,  
द्रौपदी के उस तेज के आगे, सब कौरव अब मात हुए।

मेरी कविता इस भक्ति को, वंदन बारंवार करे,  
जहाँ परमात्मा स्वयं आकर, नारी का उद्धार करे।  
चीरहरण का वह अपराध, अब प्रलय को आमंत्रण था,  
द्रौपदी का हर एक आँसू, अब विनाश का मंत्रण था।

## ॥ द्रौपदी की भीषण प्रतिज्ञा और खुले केश ॥

मैं **संजीव**, सुन रहा हूँ अब, वह सिंहनी की सी दहाड़, जिसने हिलाकर रख दिया, कुरुवंश का वह पूरा पहाड़। द्रौपदी ने केश खोल दिए, और कसम यह खाई थी, जब तक दुःशासन के लहू से, न इन्हें धोऊँगी मैं भी—

तब तक ये केश न बंधेंगे, यह मेरा भीषण प्रण है, आज से ही आरम्भ हुआ, यह महाभारत का रण है। मैं लिखता हूँ वह ज्वाला, जो अब बुझने वाली नहीं, अग्निसुता की यह प्रतिज्ञा, अब रुकने वाली नहीं।

भीम ने भी सौगंध ली, कि छाती चीर के रक्त पिएगा, दुर्योधन की जंघा तोड़, वह अधर्म को न जीने देगा। सभा में सन्नाटा था, और काल खड़ा मुस्काता था, द्रौपदी का हर एक शब्द, प्रलय को पास बुलाता था।

मेरी लेखनी इस क्रोध को, न्याय की एक मशाल कहे, जो अपमानित नारी के, भीतर की एक विशाल कहे। **‘पंच प्रभा’** की तीसरी ज्योति, अब चंडी का रूप लिए, खड़ी है कुरुक्षेत्र की, रणभूमि का एक स्वरूप लिए।

## ॥ वनवास का कष्ट और जयद्रथ का दुस्साहस ॥

---

मैं **संजीव**, अब पांडवों के संग, वन के पथ पर राही हूँ,  
जहाँ द्रौपदी के दुखों का, मैं एक अदना सिपाही हूँ।  
महलों की वह राजवधू अब काँटों पर सोती है,  
पर अपनी उस प्रतिज्ञा को, वह क्षण-क्षण संजोती है।

काम्यक वन के भीतर भी, शांति उसे न मिलती थी,  
एक पुरानी दुश्मन की नजर, वहाँ भी उस पर गड़ती थी।  
जयद्रथ आया कपट लिए, और द्रौपदी को हर ले गया,  
एक बार फिर नारी का मान, वह कामी पद-दलित कर  
गया।

मैं लिखता हूँ वह पीछा, जो भीम और अर्जुन ने किया,  
पकड़ा उस अधर्मी को, और उसका सारा घमंड पिया।  
द्रौपदी ने दया नहीं, उसे उचित दंड दिलवाया था,  
मुंडन करवाकर उसका, उसे दुनिया को दिखाया था।

वन के इन कष्टों ने, उसके संकल्प को और निखारा,  
वह स्त्री नहीं, वह तो थी—एक दहकता हुआ अंगारा।  
मेरी कविता इस संघर्ष को, तपस्या का नाम देती है,  
जो अपनी गरिमा के लिए, हर संकट थाम लेती है।



## ॥ अज्ञातवास और कीचक का वध ॥

---

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, मत्स्य देश के राजभवन, जहाँ '**सैरध्वी**' बन कृष्णा, कर रही थी अपना कठिन वन। रानी सुदेष्णा की दासी बनकर, वह केश सँवारती थी, पर कीचक की गंदी नजर, उसे पल-पल मारती थी।

कीचक था सेनापति प्रबल, मद में चूर वह रहता था, द्रौपदी की सुंदरता देख, वह गंदे बोल कहता था। मैं लिखता हूँ वह रात जहाँ, नर्तनशाला में खेल हुआ, भीम और उस पापी का, वहाँ काल-रूपी मेल हुआ।

कीचक को पीस डाला भीम ने, जैसे कोई माटी हो, द्रौपदी ने देखा कि कैसे, पाप की जलती घाटी हो। उसकी सुरक्षा के लिए, पांडव सदा ही ढाल बने, पर कृष्णा के अपमान के, वे स्वयं ही तो काल बने।

अज्ञातवास की वह अग्नि, अब पूरी होने वाली थी, युद्ध की वह भीषण दुंदुभी, अब गूँजने ही वाली थी। मेरी लेखनी इस प्रतिशोध को, अब अंतिम धार देती है, द्रौपदी की उस पीड़ा को, अब शब्दों का विस्तार देती है।

## ॥ शांति संदेश की असफलता और युद्ध का शंखनाद ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस, संधि की अंतिम वेला पर,  
जहाँ कृष्ण आए थे रोकने, युद्ध को अपनी लीला पर।  
द्रौपदी ने रोते हुए, अपने वे खुले केश दिखाए थे,  
केशव! क्या ये बाल बंधेंगे? उसने प्रश्न उठाए थे।

क्या भूल जाऊँ मैं वह सभा? जहाँ मेरा चीर खिंचा था?  
जहाँ मेरा पूरा नारीत्व, अधर्म की खून में सिंचा था?  
कृष्ण बोले—कृष्णा! तू शांत हो, अब रण ही अंतिम पथ है,  
तैयार खड़ा है अर्जुन का, वह गांडीव और स्वर्ण—रथ है।

मैं लिखता हूँ वह क्षण, जब शांति के सब द्वार बंद हुए,  
और कुरुक्षेत्र की माटी में, प्रलय के सब छंद हुए।  
द्रौपदी की आँखों में अब, प्रतिशोध की एक लाली थी,  
वह जानती थी—अब आने वाली, एक खूनी दिवाली थी।

युद्ध का शंख बजा और, धरती काँप उठी भय से,  
अग्निसुता अब देख रही थी, मार्ग अपने विजय से।  
मेरी कविता इस संकल्प को, इतिहास की सबसे बड़ी जिद  
कहे,  
जिसके कारण हुआ जगत में, यह महा—महा युद्ध कहे।



## ॥ कुरुक्षेत्र का प्रथम दिन और रक्त का अभिषेक ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ रणभूमि के, उस भीषण हाहाकार में,  
जहाँ भाई लड़ रहे भाई से, सत्ता के इस अंधकार में।  
द्रौपदी अपने शिविर में, प्रतिपल समाचार लेती थी,  
कितने मरे और कितने बचे, वह सबका लेखा देती थी।

लहू की नदियाँ बहने लगीं, और टूटने लगे वे छत्र—मुकुट,  
जिन्होंने सभा में मौन रहकर, पिया था अपमान का घूँट।  
मैं लिखता हूँ वह गर्जना, जो भीम के कण्ठ से निकली  
थी,  
दुःशासन को सामने देख, जिसकी भुजाएं अब बिजली थी।

द्रौपदी की प्रतिज्ञा का, अब पहला पड़ाव आना था,  
उस पापी के छाती का लहू अब केशों पर छाना था।  
मैं संजीव, सिहर उठता हूँ, उस रक्त—रंजित दृश्य से,  
पर न्याय का मार्ग कठिन होता, इस जगत के अदृश्य से।

वह युद्ध केवल भूमि का नहीं, वह स्त्री के मान का था,  
अग्निसुता की उस ज्वाला के, भीषण प्रतिदान का था।  
मेरी लेखनी इस शौर्य को, अब शब्दों में पिरोती है,  
जहाँ नारी के अपमान की, बलि ये वीर अब देते हैं।

## ॥ दुःशासन वध और केशों का रक्त—शृंगार ॥

मैं **संजीव**, साक्षी हूँ अब उस, भीम के रौद्र स्वरूप का,  
जिसने बीच सभा के पापी का, किया अंत उस कुरूप का।  
दुःशासन की छाती चीरी, और उसका गरम लहू लिया,  
द्रौपदी को पुकारा—आओ! अपना प्रण अब पूरा किया।

मैं लिखता हूँ वह विचलित दृश्य, जब कृष्णा वहाँ आई थी,  
अपने खुले और बिखरे केशों में, वह खूनी धार समाई थी।  
लहू से रँगें वे केश जब, तब उसकी प्यास बुझी थी,  
सदियों से जो आग दबी थी, आज वह पूर्णतः सुलझी थी।

आज बंधेंगे ये बाल मेरे, आज मेरा प्रतिशोध हुआ,  
अधर्म के उस घोर पाप का, आज न्याय का बोध हुआ।  
मैं **संजीव**, अनुभव करूँ वह, तृप्ति और वह भारी मन,  
एक सती के स्वाभिमान का, यह था सबसे बड़ा तर्पण।

मेरी कविता इस प्रतिशोध को, एक चेतावनी लिखती है,  
कि नारी की आँखों की अग्नि, हर साम्राज्य को निगलती है।

पर अभी युद्ध शेष था, अभी दुर्योधन का अंत था,  
द्रौपदी का यह महाकाव्य, अभी और भी जीवंत था।





## ॥ अश्वत्थामा का पाप और पुत्रों का वध ॥

---

मैं **संजीव**, अब लिखता हूँ वह, काली और भयानक रात,  
जब पांडवों के शिविर में हुआ, एक नीच और कायर घात।  
अश्वत्थामा ने सोते हुए, द्रौपदी के पाँच सुत मार दिए,  
माँ की सूनी गोदी कर दी, सारे सपने ही हार दिए।

हर्ष का जो उत्सव था, वह पल में मातम बन गया,  
द्रौपदी का वह जीता हुआ संसार, अब काल का तन गया।  
मैं लिखता हूँ वह रुदन, जो उस माँ के कंठ से निकला  
था,  
जिसका हृदय प्रतिशोध के बाद, अब पुत्र-शोक में पिघला  
था।

क्या इसी विजय के लिए मैंने, अपने सुत गँवा दिए?  
क्या अधर्म को मारते-मारते, मैंने अपने वंश ही बुझा दिए?  
मैं **संजीव**, विचलित हूँ इस, जीत की भारी कीमत पर,  
जहाँ पाँचों पांडव पुत्रों का, लहू गिरा है इस माटी पर।

अग्निसुता अब टूट रही थी, पर उसका तेज निराला था,  
उसने अश्वत्थामा को दंड हेतु, फिर से खुद को सम्हाला  
था।

मेरी लेखनी इस दुख को, महाकाव्य का सबसे गहरा घाव  
कहे,  
जहाँ विजय भी हार लगे ओर अश्रु ही सत्य का भाव कहे।



## ॥ अश्वत्थामा का दंड और मणि का त्याग ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, अर्जुन का वह गांडीव तना, उस कायर वध के दोषी हेतु, जो अब मृत्यु का काल बना। द्रौपदी ने न्याय माँगा था, पर गुरुपुत्र का वध न चाहा, उसने तो बस उस पापी के, मस्तक की वह मणि चाहा।

इसकी मणि ही इसकी मृत्यु है, इसे अपमानित ही छोड़ दो,

एक माँ की पीड़ा का बदला, इसके अहंकार को तोड़ दो। मैं लिखता हूँ वह उदारता, जो प्रतिशोध के बाद आई, द्रौपदी ने अपने सुत खोकर भी, अपनी गरिमा नहीं गँवाई।

मणि छीनी गई मस्तक से, और वह दर-दर का राही हुआ, अपने ही पापों की अग्नि में, वह स्वयं ही साक्ष्य-साक्षी हुआ।

श्री कृष्ण ने वह मणि लेकर, युधिष्ठिर को भेंट में तत्क्षण दी,

अश्वत्थामा की आँखों की वह चमक, अब सदा के लिए मंद पड़ी।

जीत मिली, पर क्या मिला? मैं अक्सर यह सोचता हूँ, और **‘पंच प्रभा’** के पन्नों में, इस प्रश्न को ढूँढता हूँ। नारी की विजय तो हुई, पर उसने बहुत कुछ खोया है, इस महाभारत की माटी में, हर माँ ने अपना सुत बोया है।



## ॥ हस्तिनापुर का राज्याभिषेक और रानी का मौन ॥

---

मैं **संजीव**, खड़ा हूँ अब उस, राजतिलक के भव्य समारोह में,

जहाँ युधिष्ठिर राजा बने, इस महान राष्ट्र के मोह में।  
द्रौपदी पटरानी बनी, फिर से वे राजसी वस्त्र सजे,  
चहुँओर मंगल गान हुए, और विजय के वे शंख बजे।

पर वह मुस्कान कहाँ गई? जो पांचाल में देखी थी?  
वह चंचलता कहाँ गई? जो नियति ने पहले लिखी थी?  
मैं लिखता हूँ वह मौन, जो कृष्णा की आँखों में छाया है,  
उसने जीत के उस सिंहासन पर, केवल अपनों का साया पाया है।

महल वही, गलियाँ वही, पर लोग अब वे रहे नहीं,  
अपमान के वे घाव तो भर गए, पर यादें अब गईं नहीं।  
द्रौपदी का वह राजसी रूप, अब एक कर्तव्य का बंधन था,  
उसका हृदय तो अब भी, उन पाँच पुत्रों का ही क्रंदन था।

मेरी कविता इस रानी को, एक त्यागमयी मूरत कहे,  
जिसने अपना सब कुछ देकर, बदली राष्ट्र की सूरत कहे।  
**‘पंच प्रभा’** की तीसरी रश्मि, अब शांत और गंभीर हुई,  
अग्नि से जो जन्मी थी, अब वह गंगा सी धीर हुई।



## ॥ कृष्ण का प्रयाण और द्वापर का अंत ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, वह समय जो बदल रहा, कृष्ण चले गए निज धाम को, और द्वापर अब ढल रहा। द्रौपदी का सबसे प्रिय सखा, जब उसे छोड़कर चला गया, जैसे उसके जीवन का, सारा आधार ही अब ढला गया।

केशव! किसके भरोसे अब, यह राज-पाट मैं सम्भालूँगी? तुम्हारे बिना इस सूनी दुनिया में, कैसे मन को बहलाऊँगी? मैं लिखता हूँ वह विरह, जो कृष्णा को अब तोड़ रहा, काल का वह चक्र अब, कलयुग की ओर मुख मोड़ रहा।

पांडव भी अब थक चुके थे, इस माया के जंजाल से, वे निकलना चाहते थे अब, इस धरती के काल-जाल से। द्रौपदी ने भी समझ लिया, अब विदा का ही समय है, इस संसार में जो आया है, उसका जाना ही तो तय है।

मेरी लेखनी इस विदा को, एक दार्शनिक मोड़ देती है, जहाँ आत्मा अपनी देह के, सब बंधन अब तोड़ देती है। तीसरी प्रभा अब अपनी, अंतिम यात्रा की ओर बढ़ी, जहाँ स्वर्ग के सोपानों पर, लगनी थी एक नई कड़ी।

## ॥ महाप्रस्थान और हिमालय की चढ़ाई ॥

मैं **संजीव**, अब चल रहा हूँ, उन बर्फीली पहाड़ियों पर, जहाँ पांडव संग द्रौपदी निकली, अपनी अंतिम सीढ़ियों पर।

सब त्याग दिया, राज और पाट, और वह स्वर्ण—सिंहासन, अब तो बस उस परमात्मा के, चरणों में ही था मन।

ऊँचे—ऊँचे पर्वत शिखर, और ठंडी—तीखी हवाएं थीं, द्रौपदी के चरणों में अब, संघर्षों की कथाएं थीं। मैं लिखता हूँ वह अंतिम सफर, जहाँ शरीर साथ छोड़ रहा, पर उसका दृढ़ निश्चय अब भी, ईश्वर से नाता जोड़ रहा।

पाँचों पति आगे चले, और कृष्णा पीछे—पीछे थी, वह समर्पण की प्रतिमूर्ति, जो प्रेम के धागे में सींची थी। पर हिमालय की उस चोटी पर, एक मोड़ ऐसा आया, जब द्रौपदी का वह कोमल शरीर, अपनी शक्ति न थाम पाया।

मैं सिहर उठता हूँ देखकर, उसे बर्फ पर गिरते हुए, एक महान जीवन का अंत, इस शीत में घिरते हुए। मेरी कविता इस पतन को, एक नया अर्थ देती है, कि मृत्यु भी उस नारी को, आदर से स्वीकारती है।



## ॥ द्रौपदी का पतन और युधिष्ठिर का उत्तर ॥

---

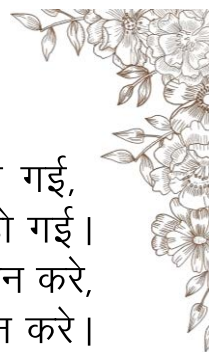
मैं **संजीव**, देख रहा हूँ उसे, गिरते हुए उस बर्फीली राह पर,  
भीम चिल्लाया—भैया! क्यों गिरी कृष्णा? इस दुख की आह पर?  
युधिष्ठिर बोले बिना मुड़े—इसका पक्षपात ही कारण है,  
अर्जुन के प्रति इसका अधिक प्रेम ही, आज इसका निवारण है।

मैं लिखता हूँ वह सत्य जो, अंत समय में प्रकट हुआ,  
कि एक महाप्राण स्त्री का भी, मोह थोड़ा तो अमिट हुआ।  
पर क्या वह दोष था? या उसकी ममता का एक हिस्सा था?  
द्रौपदी का हर एक भाव, इस जगत का एक बड़ा किस्सा था।

वह गिर गई, पर उसकी आत्मा, अब स्वतंत्र और मुक्त थी,  
अपमान, प्रतिशोध और राज—सुख से, अब वह पूर्णतः  
विरक्त थी।

मैं **संजीव**, उसके चरणों की, उस छाप को नमन करूँ,  
जिसने सिखाया नारी को, कैसे अपनी शक्ति का चयन करूँ।

अग्निसुता अग्नि में समा गई, या बर्फ में वह खो गई,  
पर वह भारत के इतिहास की, एक अमिट गाथा हो गई।  
मेरी लेखनी इस समापन को, एक महान गौरव प्रदान करे,  
द्रौपदी का यह जीवन, हर स्त्री का स्वाभिमान वर्धन करे।



## ॥ तृतीय सर्ग उपसंहार और तारा की आहट ॥

यहाँ पूर्ण हुआ वह सर्ग, जो ज्वाला से प्रारंभ हुआ,  
द्रौपदी की वह महा—कथा, अब अमरत्व में व्याप्त हुआ।  
मैं **संजीव**, इस अध्याय में, प्रतिशोध की आग लिखी,  
एक नारी के स्वाभिमान की, सबसे ऊँची राग लिखी।

‘पंच प्रभा’ की तीसरी ज्योति, अब आकाश का तारा बनी,  
जिसने अपनी अस्मिता हेतु, पूरी दुनिया से रार ठनी।  
पर अभी यात्रा शेष है, अभी दो और महा—नारियाँ हैं,  
जिनकी कथाएं भी इस जग में, बहुत अधिक भारी हैं।

अब मेरी लेखनी मुड़ रही, उस किष्किंधा के वन की ओर,  
जहाँ तारा की मेधा ने, बदला था राजनीति का छोर।  
बाली की वह बुद्धिमती पत्नी, जो ज्ञान का भंडार थी,  
अगले सर्ग में देखूँगा मैं, वह कैसे संस्कारों का आधार थी।

द्रौपदी ने लहू बहाया, अब तारा ज्ञान का दीप जलाएगी,  
एक नारी की बुद्धिमत्ता, कैसे साम्राज्य को बचाएगी?  
तृतीय सर्ग को विराम दे, अब चतुर्थ की ओर बढ़ता हूँ,  
मैं **संजीव**, अपनी पूर्ण श्रद्धा से, नया इतिहास गढ़ता हूँ।





## चतुर्थ सर्ग मेधा की महाशक्ति (तारा)

---





## ॥ किष्किंधा की आभा और तारा का परिचय ॥

---

मैं **संजीव**, अब पहुँचा हूँ उस, किष्किंधा के दुर्गम वन में,  
जहाँ राजनीति और शक्ति का, द्वंद्व मच रहा जन-मन में।  
तारा वहाँ की रानी थी, जो केवल रूप की खान न थी,  
वह ज्ञान, तर्क और मेधा की, साक्षात् एक विद्वान ही थी।

सुषेण की वह पुत्री थी, जो वैद्यराज कहलाते थे,  
तारा के निर्णय तो स्वयं, देवताओं को भी भाते थे।  
मैं लिखता हूँ वह प्रखर बुद्धि, जो बाली का भी बल बनी,  
संकट के काले मेघों में, जो बिजली सी चपल बनी।

वानर कुल की वह मर्यादा, और संस्कृति का आधार थी,  
अन्याय के विरुद्ध खड़ी, वह एक तीक्ष्ण तलवार थी।  
मैं **संजीव**, उस प्रज्ञा को, शब्दों में आज उतारता हूँ,  
'**पंच प्रभा**' की चौथी ज्योति, तारा को अब पुकारता हूँ।

रूपवान तो बहुत हुई, पर बुद्धिमती कोई विरल हुई,  
तारा की वह जीवन-गाथा, अब शब्दों में अविरल हुई।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, उसके व्यक्तित्व का विस्तार,  
जो अपनी बुद्धि के बल पर, करती थी सबका उद्धार।



## ॥ बाली का बल और तारा का परामर्श ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, बाली का वह प्रचंड पराक्रम, जो रावण को भी बंदी कर दे, ऐसा था उसका कठिन क्रम। पर उस बल के पीछे भी, एक शांत और स्थिर बुद्धि थी, तारा की वह मन्त्रणा ही, बाली के यश की शुद्धि थी।

बाली जब भी विचलित होता, तारा मार्ग दिखाती थी, अपनी तार्किक बातों से, वह समाधान ले आती थी। मैं लिखता हूँ वह राजसभा, जहाँ तारा का भी स्थान था, एक स्त्री की मेधा का, वहाँ होता बड़ा सम्मान था।

शक्ति जहाँ उच्छृंखल होती, तारा वहाँ अंकुश लगाती, बाली के उस भारी मद को, वह विवेक से समझाती। पर नियति ने एक खेल खेला, भाई—भाई को शत्रु किया, सुग्रीव और बाली के बीच, ईष्या का एक पत्र दिया।

मेरी लेखनी इस प्रज्ञा को, एक नई ऊँचाई देती है, जो शक्ति के मद में डूबे, पुरुषों को सीख देती है। तारा जानती थी कि केवल, बाहुबल ही पर्याप्त नहीं, बिना नीति के राज्य चले, यह संभव है, पर व्याप्त नहीं।



## ॥ सुग्रीव का निष्कासन और तारा का दुःख ॥

---

मैं संजीव, अब लिखता हूँ वह, भ्रातृ-द्वेष की घोर घड़ी,  
जब बाली ने सुग्रीव को मारा, और मर्यादा वहाँ पड़ी।  
एक छोटे से संशय ने, भाइयों में अब खाई बना दी,  
और किष्किंधा की खुशहाली, धूल में ही मिला दी।

बाली ने सुग्रीव को निकाला, और उसकी पत्नी भी हर ली,  
तारा ने जब यह देखा तो, आँखों में अपनी नमी भर ली।  
स्वामी! यह अनर्थ है घोर, अनुज का भी सम्मान करो,  
भ्रातृ-वधू का मान रखकर, तुम अपना भी कल्याण करो।

मैं लिखता हूँ वह साहस, जो तारा ने बाली के सम्मुख  
दिखाया,  
अन्याय के विरुद्ध उसने, अपना स्वर भी प्रखर उठाया।  
पर बाली था मद में अंधा, उसने तारा की बात न मानी,  
शुरू हो गई अब यहीं से, किष्किंधा की पतन-कहानी।

तारा विवश थी राजभवन में, पर मौन उसका बोलता था,  
वह जानती थी यह अधर्म, अब विनाश का द्वार खोलता  
था।

मेरी कविता इस नारी की, सत्य-प्रियता को गाती है,  
जो अपनों के भी दोषों को, सीधे मुँह कह पाती है।



## ॥ राम का आगमन और तारा की शंका ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, ऋष्यमूक पर्वत का वह साया,  
जहाँ राम और सुग्रीव मिले, और शुरू हुई वह ईश्वरीय  
माया ।

हनुमान की बुद्धि ने, दो मित्रों का वह मेल कराया,  
बाली के वध का निश्चय अब, राम के हृदय में समाया ।

जब सुग्रीव ने गर्जना की, किष्किंधा के उन द्वारों पर,  
तारा समझ गई कि आया है, काल अब उन द्वारों पर ।  
उसने बाली का हाथ थामा—स्वामी! मत जाओ रण में अभी,  
सुग्रीव अकेला नहीं आया, है साथ कोई शक्ति महान अभी ।

मैं लिखता हूँ तारा का वह, अद्भुत और सटीक पूर्वानुमान,  
जो देख रही थी राम के भीतर, ईश्वर का वह दिव्य मान ।  
मैंने सुना है अयोध्या के, दो वीर यहाँ पर आए हैं,  
सुग्रीव के सूने जीवन में, वे आशा बन कर छाए हैं ।

तारा ने बाली को रोका, और कूटनीति की बात कही,  
संधि कर लो भाई से, इसी में है अब भलाई सही ।  
पर बाली का पुरुष—अहं, अब मृत्यु को आमंत्रण था,  
तारा की उस चेतावनी का, हो रहा अब अनादर था ।



## ॥ बाली का हठ और रणभूमि का प्रस्थान ॥

---

मैं **संजीव**, साक्षी हूँ उस, बाली के भीषण अहंकार का, जिसने ठुकराया परामर्श, अपनी प्रिया और आधार का। तारा! तू डरती है व्यर्थ, मैं सुग्रीव को धूल चटाऊँगा, उस कायर के संग जो आए, उन्हें भी आज मिटाऊँगा।

तारा की आँखों में आँसू थे, पर वाणी में अब भी धार थी, वह जानती थी यह विदाई, अब जीवन की अंतिम हार थी। मैं लिखता हूँ वह करुण दृश्य, जब तारा ने तिलक लगाया, आशीर्वाद की जगह उसने, अपना मौन सत्कार सजाया।

बाली निकला गर्जना कर, और सुग्रीव से जा भिड़ा, एक तरफ था छल का साया, एक तरफ था क्रोध चिड़ा। पेड़ की ओट में खड़े राम ने, धनुष पर बाण चढ़ाया था, तारा का वह डर अब सचमुच, सामने खड़ा मुस्कुराया था।

मेरी लेखनी इस हठ को, एक बड़ी त्रासदी मानती है, जहाँ शक्ति अपनी सीमा, बुद्धि के आगे न जानती है। तारा खड़ी थी वातायन पर, देख रही थी उस रण को, जहाँ काल अब लील रहा था, बाली के उन अंतिम क्षण को।



## ॥ बाली वध और तारा का विलाप ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, रणभूमि के लहू-लुहान तट पर,  
जहाँ बाली गिरा है घायल होकर, नियति के उस अमिट पट पर।  
राम का वह बाण लगा, जो अमोघ और अचूक था,  
बाली की शक्ति के ढलने का, वह पहला और अंतिम चूक था।

तारा दौड़ी आई वहाँ, अपने केशों को बिखराए हुए,  
अपने जीवन के सूर्य को, ढलते हुए और जाते हुए।  
मैं लिखता हूँ वह क्रंदन, जो किष्किंधा को दहला देता था,  
एक सती का वह विलाप, राम को भी सोच में डाल देता था।

हे राम! तुमने यह क्या किया? क्यों छुपकर बाण चलाया है?  
एक वीर को मारने हेतु, क्यों छल का मार्ग सजाया है?  
राम मौन थे, क्योंकि तारा के, तर्क बहुत ही गहरे थे,  
एक नारी के दुख पर तो, स्वयं विधाता के भी पहरे थे।

मेरी कविता इस पीड़ा को, अब शब्दों में ढाल रही,  
तारा के उस करुण रुदन से, एक नया सत्य निकाल रही।  
बाली ने प्राण त्याग दिए, और तारा अब विधवा थी,  
किष्किंधा की वह राजलक्ष्मी, अब केवल एक व्यथा थी।

## ॥ तारा का विवेक और सुग्रीव का राजतिलक ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, तारा का वह नया स्वरूप, जहाँ व्यक्तिगत दुख से ऊपर, था राष्ट्र का धर्म अनूप। बाली चला गया, पर राज्य को, अब एक नया आधार चाहिए, बिखरे हुए इस वानर कुल को, एक नया पतवार चाहिए।

सुग्रीव राजा बने, पर तारा ने, मार्ग उन्हें दिखाया था, अपने क्रोध को पीकर उसने, न्याय को गले लगाया था। मैं लिखता हूँ वह बुद्धिमत्ता, जो शत्रु को भी मित्र बना ले, और बिखरे हुए साम्राज्य को, फिर से एक सूत्र में ला ले।

तारा ने सुग्रीव को स्वीकार किया, धर्म की उस वेदी पर, ताकि बचा सके वह कुल को, विनाश की उस देहली पर। यह समझौता नहीं था, यह तो—उसकी महान मेधा थी, किष्किंधा की अखंडता ही, उसकी असली श्रद्धा थी।

मेरी लेखनी इस त्याग को, एक ऊँचा स्थान प्रदान करे, जहाँ व्यक्तिगत गरिमा से बड़ा, नारी राष्ट्र का मान करे। तारा पटरानी बनी फिर से, पर उसका हृदय अब शांत था, उसके विवेक के आगे अब, हर संकट भी अब क्लान्त था।



## ॥ सुग्रीव का प्रमाद और लक्ष्मण का कोप ॥

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, वर्षा ऋतु के बीतने का समय, जहाँ सुग्रीव भूल गया था, राम को दिया हुआ अपना विनय ।

भोग—विलास में डूबा राजा, और लक्ष्मण अब क्रोध में थे, किष्किंधा को भस्म करने के, वे अब कठिन विरोध में थे ।

लक्ष्मण आए द्वार पर और, भीषण गर्जना करी,  
सारा वानर कुल काँप उठा, देख उनकी आँखों की वह झरी ।

मैं लिखता हूँ वह क्षण जब, सुग्रीव भय से छुप गया,  
और तारा ही थी वह जो, लक्ष्मण के सम्मुख झुक गया ।

शांत होइए हे सौमित्र! सुग्रीव को थोड़ा समय दीजिए,  
मित्र के इस प्रमाद को, क्षमा के जल से भिगो दीजिए ।  
तारा की वह मधुर वाणी, और तर्कों का वह जाल महान,  
लक्ष्मण का वह उग्र क्रोध, अब होने लगा था अंतर्धान ।

मेरी कविता इस कूटनीति को, तारा की विजय कहती है,  
जो अपने मीठे वचनों से, प्रलय की धारा को सहती है ।  
तारा ने बचा लिया फिर से, किष्किंधा को जलने से,  
अपनी प्रखर मेधा से और, बुद्धिमानी के चलने से ।



## ॥ तारा की मन्त्रणा और वानर सेना का प्रस्थान ॥

---

मैं संजीव, अब देख रहा हूँ, सुग्रीव का वह जागा हुआ मन,  
तारा ने जब याद दिलाया, राम का वह उपकार गहन।  
उठो राजन! अब समय आ गया, अपनी शपथ निभाने का,  
सीता की खोज हेतु अब, हर बाधा को मिटाने का ॥

तारा की प्रेरणा से ही, वानर सेना अब तैयार हुई,  
चारों दिशाओं में खोज हेतु, वीरों की अब कतार हुई।  
मैं लिखता हूँ वह उत्साह, जो तारा ने सबमें भर दिया,  
एक कुशल राजनीतिज्ञ की तरह, सबको उसने मार्ग दिया।

हनुमान और अंगद को, उसने विशेष आशीष दिया,  
विजयी भव! यह विश्वास, उसने जगदीश में जगा दिया।  
तारा की आँखों में अब, एक नई आशा की चमक थी,  
उसके ज्ञान की खुशबू से, किष्किंधा की दिशाओं में महक थी।



मेरी लेखनी इस नेतृत्व को, नारी-शक्ति का सार कहे,  
नेपथ्य में रहकर भी जो, सबका सदा उद्धार करे।  
वानर सेना निकल पड़ी, और तारा अब मौन खड़ी,  
प्रतीक्षा की उस घड़ी में अब, वह तपस्या में थी पड़ी।



## ॥ अंगद का संशय और माँ का सम्बल ॥

---

मैं संजीव, अब देख रहा हूँ, समुद्र तट पर अंगद का द्वंद्व,  
जहाँ कार्य की विफलता देख, मन में था गहरा एक द्वंद्व ।  
क्या वापस जाऊँगा मैं? क्या सुग्रीव मुझे अपनाएगा?  
या बाली का पुत्र जानकर, मुझे मृत्यु—दंड ही मिल पाएगा?

तब उसे माँ तारा की वे, शिक्षाएँ याद आई थीं,  
जिन्होंने विषम परिस्थितियों में, उसे राह दिखाई थीं ।  
पुत्र! डरो मत संकट से, तू सत्य के मार्ग पर अडिग रह,  
राम काज में प्राण जाँ, तो भी तू अपनी बात पर अडिग  
रह ।

मैं लिखता हूँ वह माँ का सम्बल, जो मीलों दूर से आ रहा,  
अंगद का वह गिरता साहस, अब फिर से शिखर को पा  
रहा ।

तारा ने उसे सिखाया था—डर और संशय ही शत्रु हैं,  
विश्वास और कठिन परिश्रम, ही सफलता के मित्र—सूत्र  
हैं ।

हनुमान ने छल्लाँग लगाई, और लंका की ओर बढ़े,  
अंगद ने भी अपना साहस, अब दृढ़ता के साथ गढ़े ।  
मेरी कविता इस शिक्षा को, 'तारा—मंत्र' का नाम देती है,  
जो अपनी संतान को सदा, निर्भय होने का ज्ञान देती है ।

## ॥ लंका विजय और राम का प्रत्यागमन ॥

मैं **संजीव**, अब सुन रहा हूँ, विजय के वे मंगल गान,  
लंका जीत ली राघव ने, और मिटा दिया रावण का मान ।  
सीता के संग लौट रहे वे, किष्किंधा के उन पथों पर,  
वानर सेना हर्षित है, और पुष्पों के उन रथों पर ।

तारा खड़ी थी स्वागत हेतु, नयनों में लेकर उल्लास,  
राम की उस करुणा ने, भर दिया था जीवन में विश्वास ।  
मैं लिखता हूँ वह मिलन जहाँ, सीता और तारा मिलीं,  
दो महान नारियाँ जैसे, एक ही उपवन में खिलीं ।

तारा ने सीता के चरणों में, अपना शीश झुकाया था,  
और जानकी ने उस विदुषी को, अपने गले लगाया था ।  
तुम्हारी मेधा की चर्चा, राम ने मुझसे की है सदा,  
तुम्हारी कूटनीति ने ही, बचाई है वानर कुल की अदा ।

मेरी लेखनी इस आदर को, नारीत्व का मान कहे,  
जहाँ एक महान दूसरी को, अपनी शक्ति का दान कहे ।  
किष्किंधा आज उत्सवमयी थी, और तारा का मन प्रसन्न,  
न्याय की उस विजय से अब, शांत थे उसके सब अंतर्मन ।

## ॥ राजमाता का उत्तरदायित्व और अंगद का अभिषेक ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, समय की वह शांत लहर, जहाँ तारा अब बन गई थी, किष्किंधा की रक्षक पहर। सुग्रीव राजा थे, पर शासन, तारा की बुद्धि से चलता था, न्याय और नीति का सूरज, वहाँ रोज सवेरे ढलता था।

अंगद को युवराज बनाकर, उसने भविष्य सुरक्षित किया, अपने पुत्र को धर्म—राह पर, चलने को दीक्षित किया। मैं लिखता हूँ वह राजमाता, जो मोह से भी ऊपर थी, जिसकी दृष्टि सदैव राज्य के, परम हित के ऊपर थी।

पुत्र! सत्ता केवल भोग नहीं, यह तो कठिन एक त्याग है, प्रजा का सुख ही राजा का, सबसे बड़ा अनुराग है। तारा की इन शिक्षाओं ने, अंगद को वीर महान बनाया, बाली के उस तेज को, उसने विवेक के साथ सजाया।

मेरी कविता इस कुशलता को, शासन का आदर्श कहे, जहाँ नारी की बुद्धिमत्ता, हर संकट का हक सहर्ष सहे। तारा की वह मेधा अब, युगों—युगों तक मिसाल बनी, किष्किंधा की वह राजलक्ष्मी, सचमुच एक ढाल बनी।

## ॥ दार्शनिक तारा और तत्त्व—बोध का ज्ञान ॥

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, तारा के उस चिंतन में, जहाँ वह खोज रही थी सत्य, इस नश्वर से जीवन में। वैद्यराज की पुत्री थी वह, देह के रोगों को जानती, पर आत्मा की शांति को ही, वह असली सुख मानती।

क्या देह ही सत्य है? या यह केवल एक आवरण है? बाली का जाना, राम का आना—क्या यह सब कोई कारण है?

मैं लिखता हूँ वह तारा का, उच्च और दिव्य तत्त्व—ज्ञान, जो भौतिक सुखों से ऊपर, करती थी ईश्वर का ध्यान।

वह जानती थी कि यह संसार, एक क्षणिक एक मेला है, हर जीव यहाँ आया है और, जाना भी उसे अकेला है। तारा की वह विद्वता अब, ऋषियों को भी चकित करती, अपने शांत स्वभाव से वह, सबके मन में शांति भरती।

मेरी लेखनी इस ज्ञान को, '**तारा—दर्शन**' का नाम दे, जो अशांत हुए इस मन को, थोड़ा सा विश्राम दे। '**पंच प्रभा**' की चौथी ज्योति, अब आध्यात्मिक हो चली, संसार के कोलाहल से दूर, वह सत्य की ओर चली।



## ॥ राम का राज्याभिषेक और अयोध्या की यात्रा ॥

---

मैं **संजीव**, अब चल पड़ा हूँ, अयोध्या की उन गलियों में, जहाँ राम का तिलक हो रहा, खुशियों की उन कलियों में।

सुग्रीव और तारा भी आए, इस गौरवमयी उत्सव में, पूरी सृष्टि सिमट आई थी, आज राम के उस वैभव में।

तारा ने देखी अयोध्या की, वह पावन और भव्य छटा, जहाँ राम—राज्य की खुशबू से, छँट गई थी दुख की घटा। मैं लिखता हूँ वह आदर जो, राम ने तारा को दिया, एक माँ के समान उनका, सत्कार और पूजन किया।

देवि! आपकी बुद्धि ने ही, सुग्रीव का मार्ग प्रशस्त किया, वानर सेना का वह बल, आपकी मन्त्रणा ने ही जागृत किया।

श्रीराम के पावन वचनों ने, तारा को गौरवान्वित किया, उसकी अद्भुत मेधा को, स्वयं नारायण ने भी स्वीकार किया।

मेरी कविता इस सम्मान को, योग्यता की जीत कहे, कि बिना नारी की सलाह के, राम—राज्य भी न रीत रहे। तारा वापस लौटी फिर, किष्किंधा की उस माटी पर, लेकर राम—प्रेम की यादें, अपनी मन की थाती पर।



## ॥ सुग्रीव का अंत और तारा का वैराग्य ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, समय का वह अंतिम पड़ाव, जहाँ सुग्रीव ने भी त्याग दिया, अपना यह शरीर—बनाव। राम के जाने के बाद अब, धरती सूनी लगने लगी, वैराग्य की वह अग्नि अब, तारा के भीतर जगने लगी।

अब किसके लिए यह राज्य? किसके लिए यह साज—श्रृंगार?

तारा ने अब छोड़ दिया, वह सारा राजसी ठाठ—व्यवहार। मैं लिखता हूँ वह सन्यास, जो उसने स्वयं ही चुना था, सत्य की उस चादर को उसने, अब अपने हाथों बुना था।

अंगद को राजा बनाकर, वह वन की ओर निकल पड़ी, लेकर राम का नाम अधर पर, वह साधना में थी खड़ी। अब न कोई रानी थी वह, न कोई राजनीति की ज्ञाता, अब तो वह केवल थी—उस ईश्वर की एक अनन्य माता।

मेरी लेखनी इस मोड़ पर, मौन और श्रद्धा से भरी, तारा की वह अंतिम यात्रा, अब थी पूर्णतः ईश्वरी। चौथी प्रभा अब अपनी, पूर्णता की ओर बढ़ रही, संसार के इन बंधनों से, अब वह सदा को लड़ रही।





## ॥ तारा का आध्यात्मिक विदा और अमरत्व ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, तुंगभद्रा के शीतल तट पर,  
जहाँ तारा ने ली अंतिम सांस, इस नश्वर संसार के पट  
पर।

कोई शोक नहीं था वहाँ, बस एक दिव्य सी शांति थी,  
जैसे मिट गई हो हृदय से, जीवन की हर एक भ्रांति थी।

उसकी मेधा अब विलीन हुई, उस अनंत आकाश में,  
तारा सचमुच तारा बन गई, इस जग के प्रकाश में।  
मैं लिखता हूँ वह महाप्रयाण, जो ज्ञान की एक विजय थी,  
जिसकी मेधा के आगे तो, मृत्यु भी स्वयं निर्भय थी।

किष्किंधा की पहाड़ियों में, आज भी उसकी गूँज है,  
वह बुद्धिमती नारी ही तो, नारीत्व का एक पुंज है।  
मैं **संजीव**, अपनी इस लेखनी से, उसे नमन किया,  
तारा की उस पावन स्मृतियों को, शब्दों में जतन किया।

मेरी कविता इस विदाई को, एक नया सवेरा मानती,  
कि मेधा कभी मरती नहीं, वह तो अमरता को जानती।  
तारा चली गई पर उसका, ज्ञान अब भी शेष है,  
**‘पंच प्रभा’** की इस गाथा का, यह अद्भुत परिवेश है।



## ॥ मेधा और नीति का शाश्वत संदेश ॥

---

मैं **संजीव**, अब समेट रहा हूँ, तारा के जीवन का सार,  
जिसने सिखाया कि बुद्धि ही, है सफलता का आधार।  
वह कहती है—ओ नारी! तू अपनी प्रज्ञा को जगा,  
अंधविश्वास और जड़ता को, तू अपने मन से भगा।

शक्ति से बड़ा विवेक है, यह तारा का संदेश महान,  
संकट में जो धीरज न खोए, वही है असली इंसान।  
मैं लिखता हूँ वह साहस जो, तर्कों में छुपा होता है,  
जो अपनी बुद्धिमत्ता से, हर बिगड़े काम को करता है।

तारा की यह कथा अब, हर स्त्री को बल प्रदान करे,  
अपने अधिकारों हेतु वह, सदैव ही अनुसंधान करे।  
नारी केवल कोमल नहीं, वह तो एक तीव्र प्रज्ञा है,  
जो साम्राज्य बदल सकती है, ऐसी उसकी आज्ञा है।

मेरी लेखनी इस संदेश को, '**तारा—गाथा**' का हृदय कहे,  
जो मेधा और सत्य की, एक अनवरत सी विजय रहे।  
चौथी प्रभा ने दे दिया, अब दुनिया को नया ज्ञान,  
तारा के उस तेज से अब, रोशन है पूरा जहान।



## ॥ पंचकन्या और तारा का स्थान ॥

---

मैं **संजीव**, अब सोच रहा हूँ, उन पाँचों महान नारियों को, जिन्होंने अपने त्याग से सींचा, इन पौराणिक क्यारियों को। अहिल्या, द्रौपदी और कुंती—सबकी अपनी एक आग थी, पर तारा की वह मेधा ही, सबसे अनूठा एक राग थी।

वह सती तो थी ही, पर वह—एक महान परामर्शदाता थी, संकट काल में किष्किंधा की, वह असली भाग्यविधाता थी। मैं लिखता हूँ वह स्थान जो, उसे पंचकन्या में मिला, उसकी बुद्धिमानी का ही तो, यह सारा पावन खिला।

अपमान सहे उसने भी, पर उसने विवेक न खोया कभी, बाली के वध के बाद भी, वह व्यर्थ कभी रोया नहीं। उसने सत्य को स्वीकार किया, और भविष्य की नींव रखी, तारा की वह दूरदर्शिता, ही थी सबसे बड़ी और सखी।

मेरी कविता इस स्थान को, एक गौरवमयी पद प्रदान करे, तारा की उस महान मेधा को, यह जग सदैव ही नमन करे। **‘पंच प्रभा’** की चौथी कड़ी, अब यहाँ अपनी पूर्णता पाती, तारा के उस दिव्य तेज की, अब महिमा को संसार गाती।



## ॥ आधुनिक युग और तारा की प्रासंगिकता ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, आज के इस कठिन समय को,

जहाँ हर कदम पर स्त्री को, झेलना पड़ता नए भय को।  
तारा का वह जीवन—दर्शन, आज भी हमें राह दिखाता है,  
संकटों से जूझने का, वह एक नया मंत्र सिखाता है।

आज की नारी को भी, तारा जैसा प्रज्ञावान होना होगा,  
अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर, हर बाधा को खोना होगा।  
मैं लिखता हूँ वह आधुनिक तारा, जो राजनीति में प्रखर है,

जो विज्ञान और ज्ञान के, हर शिखर पर अब निडर है।

बिना विवेक के शक्ति तो, केवल एक विनाश का साधन है,  
तारा की वह नीति ही तो, असली विकास का आराधन है।  
मेरी लेखनी इस प्रासंगिकता को, '**युग—युग की आवाज**'  
कहे,

तारा का वह जीवन ही तो, नारीत्व का असली साज कहे।

**'पंच प्रभा'** का यह संदेश, अब घर—घर में पहुँचना चाहिए,  
तारा जैसा प्रखर विवेक, अब हर मन में जगना चाहिए।  
मैं **संजीव** इसी भाव से, यह चतुर्थ सर्ग बुना हूँ,  
तारा की उस पावन गाथा को, अपनी आत्मा से सुना हूँ।

## ॥ उपसंहार और मंदोदरी की प्रतीक्षा ॥

यहाँ पूर्ण हुई वह गाथा, जो मेधा से प्रारंभ हुई,  
तारा की वह दिव्य बुद्धि, अब जन—मन में व्याप्त हुई।  
मैंने भी तो इस अध्याय में, ज्ञान और नीति की बात कही,  
तारा के उस उज्ज्वल चरित्र की, एक पावन सी गात कही।

पर 'पंच प्रभा' की यात्रा में, अभी एक शिखर बाकी है,  
लंका की वह महान राज्ञी, मंदोदरी की झाँकी बाकी है।  
अधर्म के उस गढ़ में रहकर, जो धर्म का दीप जलाती थी,  
अगले सर्ग में देखूँगा मैं, वह कैसे सत्य को अपनाती थी।

तारा ने बुद्धि दिखाई, अब मंदोदरी सतीत्व की आँच  
दिखाएगी,  
एक महान राक्षस की पत्नी, कैसे स्वयं को बचाएगी?  
चतुर्थ सर्ग को विराम दे, अब पंचम की ओर बढ़ता हूँ,  
मैं **संजीव** अपनी लेखनी से, अब लंका की ओर बढ़ता हूँ।।

रावण की उस नगरी में भी, जो भक्ति सुधा बरसाएगी,  
पति—धर्म और सत्य मार्ग की, नई परिभाषा गढ़ेगी।  
इस काव्य—यात्रा के अंतिम पड़ाव को, अब नया रूप मैं  
देता हूँ  
**'पंच—प्रभा'** के पंचम पुष्प को, श्रद्धा से अर्पित करता, हूँ।



पंचम सर्ग  
सतीत्व की स्वर्णिम आभा (मंदोदरी)

---



## ॥ मय—पुत्री का परिचय और लंका का ऐश्वर्य ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, स्वर्णमयी लंका के द्वार पर,  
जहाँ वैभव अट्टहास करता, नियति के ऊँचे पहाड़ पर।  
मय दानव की पुत्री वह, मंदोदरी जिसका नाम रहा,  
जिसके रूप और शील का, त्रिलोकी में सम्मान रहा।

वह केवल राक्षस—राज की पत्नी नहीं, वह सत्य की  
पहचान थी,  
अधर्म के उस घोर गढ़ में, वह एक पावन जान थी।  
मैं लिखता हूँ वह कोमलता, जो कंचन सी चमकती थी,  
पर जिसके भीतर विवेक की, एक ज्वाला भी दहकती थी।

लंका का सारा वैभव, उसके चरणों में झुकता था,  
पर उसका मन तो सदैव, धर्म की राह पर रुकता था।  
मैं संजीव, उस महान सती को, शब्दों में अब लाता हूँ,  
**‘पंच प्रभा’** की पाँचवीं ज्योति, मंदोदरी को ध्याता हूँ।

रूपवान वह इतनी थी कि, देवांगनाएँ भी लजाती थीं,  
पर उसकी सादगी और शुचिता, सबका मन हर्षाती थीं।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, उसके व्यक्तित्व का विस्तार,  
जो अपनी गरिमा के बल पर, थी लंका का असली श्रृंगार।



## ॥ रावण का मद और मंदोदरी की चेतावनी ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, दशानन का वह भीषण  
अहंकार,  
जिसने जीत ली थी दुनिया, और तोड़ा था सबका सत्कार ।  
मंदोदरी जानती थी कि, यह मद विनाश का कारण है,  
अधर्म की यह बढ़ती शक्ति, स्वयं काल का आमंत्रण है ।

वह एकांत में रावण को, सदैव नीति समझाती थी,  
अपने प्रिय पति को वह, सत्य का मार्ग दिखाती थी ।  
मैं लिखता हूँ वह साहस, जो उसने उस असुर के सम्मुख  
दिखाया,  
स्वामी! यह पर—धन और पर—नारी, कभी न किसी को  
रास आया ।

रावण हँसकर टाल देता, अपनी इस प्रिय की बातों को,  
वह नहीं देख पा रहा था, आने वाली काली रातों को ।  
मंदोदरी का हृदय काँपता, देख पति के उन कृत्यों को,  
वह रोक न पाती थी अपने, उन असुरों के भृत्यों को ।

मेरी लेखनी इस संघर्ष को, एक मूक वेदना कहती है,  
जहाँ एक पत्नी अपने पति के, पापों का भार सहती है ।  
वह जानती थी कि स्वर्ण लंका, अब राख होने वाली है,  
क्योंकि अधर्म की यह छाया, अब बहुत अधिक काली है ।



## ॥ सीता का अपहरण और सती का संताप ॥

मैं **संजीव**, अब साक्षी हूँ उस, लंका के काले अध्याय का,  
जब रावण ने हरण किया, राम की पावन छाया का।  
अशोक वाटिका में जब उसने, जानकी को लाकर रखा,  
मंदोदरी के कलेजे पर, जैसे किसी ने विष ही चखा।

वह दौड़ पड़ी पति के पास—यह क्या अनर्थ कर डाला है?  
साक्षात् मृत्यु को आपने, अपने भवन में पाला है।  
सीता कोई नारी नहीं, वह तो जगदम्बा की शक्ति है,  
उन्हें लौटा दो राघव को, इसी में सबकी मुक्ति है।

मैं लिखता हूँ वह करुण स्वर, जो महल की दीवारों में  
गूँजा,  
पर रावण के अहंकार ने, कभी न धर्म को पूजा।  
मंदोदरी ने छुपकर जाकर, सीता के दुख को बाँटा था,  
उसके सतीत्व ने ही तो, रावण के पाप को काटा था।

एक तरफ पति—व्रत धर्म था, एक तरफ था सत्य खड़ा,  
मंदोदरी का यह अंतर्द्वंद्व, हिमालय से भी था बड़ा।  
मेरी कविता इस पीड़ा को, नारीत्व की ऊँचाई मानती,  
जो अधर्मी पति के घर रहकर भी, केवल धर्म को जानती।



## ॥ कुंभकर्ण और मेघनाद का प्रस्थान ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, हनुमान की वह जलती पूँछ,  
जिसने जलाकर राख कर दी, लंका की वह ऊँची मूँछ।  
स्वर्ण के वे ऊँचे महल, अब धू-धू कर जल रहे थे,  
मंदोदरी के मन में अब, भारी संशय पल रहे थे।

अभी भी समय है स्वामी! राम से क्षमा माँग लीजिए,  
इस जलती हुई लंका को, अभय दान अब दीजिए।  
पर रावण का क्रोध बढ़ा, उसने युद्ध का शंख बजाया,  
विभीषण को भी लात मारकर, अपने घर से भगाया।

मैं लिखता हूँ वह सन्नाटा, जो आग लगने के बाद हुआ,  
लंका का वह मिथ्या गर्व, अब खंड-खंड बर्बाद हुआ।  
मंदोदरी अब समझ गई, अब विनाश की बारी है,  
सारे कुल के नाश की, अब हो चुकी तैयारी है।

मेरी लेखनी इस हाहाकार को, शब्दों में अब ढाल रही,  
मंदोदरी के आँसुओं से, एक नया सत्य निकाल रही।  
पाप की लंका जल गई, पर सती का तेज बाकी था,  
अभी तो राम और रावण का, अंतिम रण बाकी था।



## ॥ कुंभकर्ण और मेघनाद का प्रस्थान ॥

---

मैं **संजीव**, अब लिखता हूँ वह, विदा का सबसे करुण क्षण,  
जब अपने पुत्र और देवर को, युद्ध में भेजा भारी मन।  
मेघनाद वीर महान था, मंदोदरी का वह दुलारा था,  
पर पिता की हठ की अग्नि में, वह भी बेसहारा था।

जाओ सुत! पर याद रखना, अधर्म कभी न जीतता है,  
न्याय की उस वेदी पर, लहू अपनों का ही बीतता है।  
मैं लिखता हूँ वह माँ का हृदय, जो भीतर ही भीतर टूटा  
था,  
जिसका एकमात्र सहारा अब, मृत्यु की ओर छूटा था।

कुंभकर्ण भी जाग उठा, और रणभूमि की ओर चला,  
मंदोदरी ने देख लिया, अब होने वाला न कुछ भला।  
एक—एक कर सब चले गए, लंका के वे शूरवीर महान,  
अब तो बस शेष रहा था, रावण का वह झूठा मान।

मेरी कविता इस विवशता को, वंदन बारंवार करे,  
जहाँ एक सती अपने कुल का, स्वयं ही तर्पण स्वीकार  
करे।

**‘पंच प्रभा’** की पाँचवीं रश्मि, अब दुख के सागर में थी,  
मंदोदरी की वह करुणा, अब प्रलय के घेरे में थी।



## ॥ अंतिम रण और रावण का महाप्रयाण ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, वह कुरुक्षेत्र सा रण भीषण,  
जहाँ राम का बाण ढूँढ़ रहा, अभिमानी रावण का  
कण—कण ।

मंदोदरी कुटिया में बैठी, मन ही मन थी जप रही,  
पति की रक्षा हेतु वह, अपनी ही आत्मा से तप रही ।

पर जहाँ धर्म न हो वहाँ, सतीत्व भी क्या कर पाता?  
पाप का घड़ा जब भर जाए, तो ईश्वर भी मुख मोड़ जाता ।  
मैं लिखता हूँ वह अंतिम क्षण, जब नाभि में बाण लगा,  
लंका का वह सूर्य अस्त हुआ, और काल का चक्र जगा ।

दशानन गिर पड़ा भूमि पर, टूट गया वह दम्भ प्रखर,  
गूँज उठा जय श्री राम का, स्वर अंबर और धरती पर ।  
मंदोदरी ने सुना वह नाद, और समझ गई सब शेष हुआ,  
उसका सुहाग, उसका गर्व, अब माटी में परिवेश हुआ ।

मेरी लेखनी इस पतन को, न्याय की एक जीत कहे,  
पर एक सती के हृदय के लिए, यह सबसे करुण रीत रहे ।  
लंकापति अब नहीं रहा, बस शेष रहा उसका नाम यहाँ,  
मंदोदरी का रुदन अब, कर रहा था भारी संग्राम यहाँ ।

## ॥ रणभूमि में विलाप और राम का दर्शन ॥

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, रक्त-रंजित मैदानों में,  
जहाँ मंदोदरी ढूँढ रही, रावण को उन प्राणों में।  
देखा जब वह विशाल देह, जो धूल में अब पड़ी हुई,  
सती की वह सारी शक्ति, आंसुओं में अब खड़ी हुई।

स्वामी! आपने क्यों न माना, मेरा वह करुण निवेदन?  
आज देखिए हो रहा है, इस स्वर्ण लंका का विसर्जन।  
मैं लिखता हूँ वह विलाप, जो पत्थरों को भी पिघला दे,  
एक पत्नी का वह प्रेम, जो ईश्वर को भी रुला दे।

तभी सम्मुख आए राघव, लेकर नयनों में करुणा अपार,  
मंदोदरी ने देख लिया, साक्षात् विष्णु का अवतार।  
उसने न कोई रोष किया, न कोई कड़वा शब्द कहा,  
राम के उन पावन चरणों में, अपना सारा दुख बहा।

मेरी कविता इस समर्पण को, एक महान सत्य मानती,  
जहाँ पीड़ा भी परमात्मा को, अपने सम्मुख है जानती।  
मंदोदरी ने पहचान लिया, राम ही वह परमेश्वर हैं,  
जिनके हाथों मृत्यु पाना, भी सबसे बड़ा वर है।



## ॥ सतीत्व की रक्षा और विभीषण का राजतिलक ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, लंका का वह नया सवेरा,  
जहाँ राम ने मिटा दिया, अधर्म का वह घना अंधेरा।  
विभीषण को राजा बनाया, और धर्म की नींव रखी,  
पर मंदोदरी के सम्मान की, राम ने ही की रखवाली सखी।

लोक—लाज और मर्यादा का, राम ने पूरा मान रखा,  
मंदोदरी के सतीत्व का, उन्होंने सदा ध्यान रखा।  
मैं लिखता हूँ वह व्यवस्था, जो न्याय ने वहाँ बनाई थी,  
शत्रु की विधवा को भी, राम ने गरिमा दिलाई थी।

विभीषण ने अपनी भाभी को, राजमाता का पद दिया,  
पर मंदोदरी ने तो अब, वैराग्य को ही चुन लिया।  
अब न यह राज चाहिए, न स्वर्ण की ये दीवारें,  
मुझे तो बस अब चाहिए, प्रभु भक्ति की ये पतवारें।

मेरी लेखनी इस शुचिता को, युगों तक अब गाएगी,  
मंदोदरी की यह पावनता, सबको राह दिखाएगी।  
अधर्म के घर में रहकर भी, जो अपनी आभा न खोए,  
वही तो है असली सती, जो सत्य के बीज बोए।

## ॥ अशोक वाटिका का मिलन और सीता की विदाई ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, दो नारियों का वह संवाद,  
जहाँ सीता और मंदोदरी ने, भुला दिया हर एक विवाद।  
जानकी विदा हो रही थीं, अयोध्या की ओर बढ़कर,  
मंदोदरी ने शीश झुकाया, उनकी पावन शक्ति पढ़कर।

क्षमा करना देवि! जो भी, यहाँ आपके साथ हुआ,  
रावण के उस पाप का, आज अंततः सनाथ हुआ।  
सीता ने गले लगाया, और मंदोदरी को आशीष दिया,  
तुम्हारी शुचिता ने ही तो, लंका का सारा विष पिया।

मैं लिखता हूँ वह विदाई, जो प्रेम और आदर से भरी थी,  
दो महान सती नारियाँ, जैसे मिलन की एक लहरी थी।  
मंदोदरी की आँखों में अब, एक शांति का वास था,  
सीता की उस करुणा पर, उसे अब पूर्ण विश्वास था।

मेरी कविता इस गरिमा को, नारीत्व का श्रृंगार कहे,  
जहाँ घृणा की जगह केवल, मिलता पावन प्यार कहे।  
लंका से विदा हुई जानकी, और मंदोदरी अब मौन रही,  
अपने कर्तव्यों की राह पर, वह अडिग और अलोन रही।



## ॥ आध्यात्मिक जागृति और लंका का पुनर्निर्माण ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, मंदोदरी का वह नया ध्यान, जहाँ वह प्रजा की सेवा में, लगा रही थी अपना प्राण। विभीषण को राह दिखाती, और नीति उसे समझाती थी, उजड़ी हुई इस लंका को, वह फिर से सुंदर बनाती थी।

राक्षस कुल में अब उसने, धर्म के संस्कार बोए, ताकि फिर कोई रावण, अपनी मर्यादा न खोए। मैं लिखता हूँ वह परिवर्तन, जो एक स्त्री ला सकती है, जो अपनी मेधा से, उजड़ा साम्राज्य बचा सकती है।

वह तपस्विनी बन गई थी, स्वर्ण महलों के भीतर भी, उसका मन तो लगा रहता, उस निराकार ईश्वर में ही। मंदोदरी का यह चरित्र अब, प्रखर दीप सा जलता था, लंका का हर एक नागरिक, अब धर्म—राह पर चलता था।

मेरी लेखनी इस कर्म—योग को, वंदन बारंवार करे, जहाँ दुख को शक्ति बनाकर, नारी सबका उद्धार करे। **‘पंच प्रभा’** की पाँचवीं ज्योति, अब अमृत बरसाती है, मंदोदरी की यह गाथा, जग को नया पाठ पढ़ाती है।





## ॥ काल का प्रवाह और सती का निर्वाण ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, समय का वह अंतिम किनारा,  
जहाँ मंदोदरी ने छोड़ दिया, इस नश्वर जगत का सहारा।  
उसने अपना सारा जीवन, एक तपस्या सा जिया था,  
अधर्म की उस लंका में, उसने धर्म का अमृत पिया था।

जब प्राण छोड़ने का क्षण आया, वह शांत और स्थिर थी,  
राम के नाम की माला उसके, अंतर्मन में अधिर थी।  
मैं लिखता हूँ वह महाप्रयाण, जहाँ आत्मा मुक्त हुई,  
संसार के इन बंधनों से, वह पूर्णतः विरक्त हुई।

आकाश से पुष्प गिरे और, देवों ने भी गान किया,  
एक महान सती नारी का, सबने मिलकर मान किया।  
मैं **संजीव**, अपनी इस कलम से, उसे श्रद्धा अर्पित की,  
मंदोदरी की वह पावन स्मृतियाँ, पन्नों पर अंकित की।

मेरी कविता इस निर्वाण को, अमरता का द्वार कहे,  
जहाँ सतीत्व की वह आभा, करती सबका उद्धार कहे।  
पाँचों प्रभा अब पूर्ण हुई, पर महाकाव्य अभी शेष है,  
आगे के पाँच सर्गों का, अब नया एक परिवेश है।



## ॥ पंचकन्या का संयुक्त तेज और वैचारिक संगम ॥

---

मैं **संजीव**, अब सोच रहा हूँ, इन पाँचों की शक्ति पर,  
जिन्होंने हिला दिया था जग को, अपनी दृढ़ भक्ति पर।  
अहिल्या की जड़ता टूटी, कुंती ने संघर्ष सहा,  
द्रौपदी की अग्नि गूँजी, तारा ने विवेक कहा।

मंदोदरी का सतीत्व चमकता, इन सबके बीच यहाँ,  
इन पाँचों ने मिलकर बदली, इस भारत की साख वहाँ।  
मैं लिखता हूँ वह संगम जहाँ, नारीत्व की जीत हुई,  
पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर, एक नई प्रीत हुई।

ये केवल नाम नहीं हैं, ये तो—पाँच महा—विचार हैं,  
जिन्होंने समय को मोड़ दिया, वे ये ही आधार हैं।  
मेरी लेखनी इन पाँचों को, '**पंच प्रभा**' का नाम दे,  
जो हर स्त्री के अंतर्मन को, नया एक आयाम दे।

दश सर्गों के इस सफर में, यह प्रथम खंड पूर्ण हुआ,  
नारी—शक्ति का यह उद्घोष, अब विश्व में संपूर्ण हुआ।  
मैं **संजीव**, अपनी आत्मा से, अब आगे की ओर बढ़ूँगा,  
इन पाँचों के दर्शन से, मैं नया सवेरा गढ़ूँगा।



## ॥ समाज की रूढ़ियाँ और नारी का प्रश्न ॥

---

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ, इस दुनिया के समाज से,  
क्यों तुमने नारी को बाँधा, अपने झूठे राज से?  
पाँचों सती पुजती हैं पर, क्या उनका दर्द सुना तुमने?  
क्या उनकी आँखों के पानी से, कोई सच बुना तुमने?

कभी शाप, कभी जुआ, कभी हरण की पीड़ा थी,  
इन महान देवियों के संग, नियति की क्या क्रीड़ा थी?  
मैं लिखता हूँ वह प्रश्न जो, आज की नारी पूछती है,  
क्यों अपनी मर्यादा हेतु, वह हर पल खुद को फूँकती है?

मेरी कलम अब लड़ेगी, इन कुरीतियों के विरुद्ध यहाँ,  
सत्य की आवाज बनेगी, इस महाकाव्य में शुद्ध यहाँ।  
अहिल्या से मंदोदरी तक, एक ही करुण कहानी है,  
पुरुष—अहं के आगे हरदम, हारी ये कल्याणी हैं।

पर अब समय बदल रहा है, अब चेतना की बारी है,  
**‘पंच प्रभा’** की ये रश्मियाँ, अब अधर्म पर भारी हैं।  
मैं **संजीव**, अपनी इस वाणी को, अब और धार दूँगा,  
नारी के इस स्वाभिमान को, नया एक विस्तार दूँगा।

## ॥ आगामी सर्गों की रूपरेखा और नया संकल्प ॥

---

मैं **संजीव**, अब कर रहा हूँ, अगले पाँच सर्गों की तैयारी, जहाँ नारीत्व के अन्य रूपों की, दिखेगी महिमा भारी। अभी तो केवल पाँच प्रभा, अपनी ज्योति दिखा पाई हैं, अभी कई अन्य वीरांगनाएँ, मन के उपवन में छाई हैं।

छठा सर्ग बताएगा—सतीत्व और ममता का नया रूप, सातवाँ सर्ग दिखाएगा—संघर्षों का वह प्रखर अनूप। मैं लिखता हूँ वह योजना, जो दश सर्गों तक जाएगी, **‘पंच प्रभा’** की यह माला, अब विश्व का गौरव बढ़ाएगी।

हर शीर्षक सोलह पंक्तियों का, यह मेरा संकल्प अटल, ताकि काव्य की सरिता बहे, होकर बिल्कुल निर्मल। मेरी लेखनी अब और भी, गहराई में उतरेगी, नारी—हृदय के महासागर से, नए मोती को उभरेगी।

यह महाकाव्य नहीं, यह मेरी अपनी साधना है, स्त्री—जाति के गौरव की, यह मंगल आराधना है। पाँच सर्गों की नींव रखी, अब भवन खड़ा करना है, सत्य और न्याय के रंगों से, यह अंबर भरना है।



## ॥ दार्शनिक निष्कर्ष – जड़ से चेतन की यात्रा ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, इस विकास का चक्र महान,  
कैसे पत्थर बनी अहिल्या, बन गई फिर से प्राणवान।  
कैसे कुंती की ममता ने, महाभारत को जन्म दिया,  
और द्रौपदी के अपमान ने, विनाश का ही अमृत पिया।

तारा की मेधा ने दिखाया, कूटनीति का असली ढंग,  
मंदोदरी के सतीत्व ने, जीत लिया हर एक जंग।  
मैं लिखता हूँ यह यात्रा, जो जड़ से चेतन तक आई है,  
नारी की यह अदृश्य शक्ति, अब सबके मन में छाई है।

यह केवल कथा नहीं है, यह तो—जीवन का दर्शन है,  
पाप और पुण्य के बीच का, एक शाश्वत घर्षण है।  
मेरी लेखनी इस निष्कर्ष पर, आज अपनी मुहर लगाए,  
कि बिना नारी के सहयोग के, सृष्टि भी न चल पाए।

**‘पंच प्रभा’** की ये रश्मियाँ, अब सूरज बन चमकेंगी,  
अंधविश्वास की रातों को, ये पल भर में निगलेंगी।  
मैं **संजीव**, अपनी बुद्धि से, इस सत्य को प्रणाम करूँ,  
नारी के इस पावन स्वरूप को, जग के नाम करूँ।



## ॥ युगों का अंतराल और शाश्वत स्त्रीत्व ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, काल के ऊँचे शिखर पर,  
जहाँ द्वापर और त्रेता बीत गए, इस धरती के घर पर।  
पर अहिल्या का वह मौन आज भी, हर घर में मिलता है,  
कुंती का वह पुत्र—प्रेम, हर माँ के हृदय में खिलता है।

द्रौपदी की वह हुंकार, आज भी न्याय की मांग है,  
तारा का वह प्रखर विवेक, बुद्धि का एक नया स्वांग है।  
मैं लिखता हूँ वह निरंतरता, जो सदियों से अटूट रही,  
नारी की वह सहनशीलता, जो कभी न कहीं से टूट रही।

मंदोदरी का वह त्याग आज भी, धर्म की एक मशाल है,  
स्त्री का यह अद्भुत चरित्र, सचमुच बड़ा विशाल है।  
मेरी कलम इन स्मृतियों को, आधुनिक युग से जोड़ती,  
पुरानी सोच की उन धाराओं को, नया रुख मोड़ती।

मैं **संजीव**, देखा है कि, समय बदलता जाता है,  
पर स्त्री का वह गौरवशाली तत्त्व, कभी न मर पाता है।  
**‘पंच प्रभा’** की ये पाँचों कलियाँ, अब खिलकर फूल बनीं,  
इतिहास के इन काँटों के बीच, ये ही तो अब धूल बनीं।



## ॥ लेखक की आत्मकथात्मक अनुभूति ॥

---

मैं **संजीव**, जब लिखता हूँ, इन महान चरित्रों के बारे में,  
खोजता हूँ खुद को भी, इनके ही पावन किनारों में।  
मेरी लेखनी मेरा लहू है, जो पन्नों पर बहता है,  
नारी की इस मूक वेदना को, जो शब्द—शब्द कहता है।

कभी मैं गौतम का क्रोध बना, कभी राम का स्पर्श हुआ,  
कभी द्रौपदी की आग बना, कभी कृष्ण का हर्ष हुआ।  
मैं लिखता हूँ स्वयं को भी, इन शीर्षकों के घेरे में,  
जैसे कोई दीप जल रहा हो, सदियों के अंधेरे में।

यह महाकाव्य मेरी आत्मा का, एक प्रखर विस्तार है,  
नारी—शक्ति के प्रति मेरा, यह छोटा सा आभार है।  
मेरी लेखनी को बल देना, हे सरस्वती! हे माँ शारदे!  
ताकि 10 सर्गों तक पहुँचा सकूँ, अपनी ये सब यादें।

मैं **संजीव**, केवल निमित्त हूँ, लिखने वाली ये ही हैं,  
अहिल्या से मंदोदरी तक, मेरी प्रेरणा ये ही हैं।  
प्रथम पुरुष में लिखकर मैंने, इनके ही सुख—दुख जिए,  
इनकी ही आँखों के आँसू, मैंने कविता में पिए।

## ॥ काव्य—शिल्प और सृजन की ऊर्जा ॥

मैं **संजीव**, बुन रहा हूँ अब, शब्दों का यह महीन जाल,  
सोलह पंक्तियों का बंधन है, और बीस शीर्षकों की ढाल।  
हर छंद में एक लय है, हर शब्द में एक संगीत है,  
**‘पंच प्रभा’** के हर सर्ग में, नारीत्व की एक जीत है।

प्रथम पुरुष का यह प्रवाह, पाठक को पास बुलाता है,  
कवि और पात्र के बीच का, यह भेद मिटा देता है।  
मैं लिखता हूँ वह ऊर्जा, जो मुझे लिखने को उकसाती है,  
अहिल्या की वह शिला ही तो, मेरे शब्द जगाती है।

यह संरचना, यह अनुशासन, मेरी अपनी ही शैली है,  
पुरानी कथाओं को कहने की, यह एक नई पहेली है।  
मेरी लेखनी इस शिल्प पर, गर्व थोड़ा महसूस करे,  
किष्किंधा से लंका तक का, यह सारा सफर तय करे।

मैं **संजीव**, इसी अनुशासन से, 5 सर्गों को पूर्ण किया,  
नारी—शक्ति की इस ज्योति को, अपने हृदय में पूर्ण किया।  
अब आगे के 5 सर्गों में, नई ऊँचाइयाँ लानी हैं,  
**‘पंच प्रभा’** की इस महा—कथा को, अमरता दिलानी है।



## ॥ पाठक को संदेश और वैचारिक जागृति ॥

मैं **संजीव**, अब कहता हूँ तुमसे, ओ पढ़ने वाले सुधी जन!  
क्या तुमने महसूस किया, इन नारियों का वह तड़पता मन?  
यह केवल पन्ने नहीं हैं, यह तो—एक दर्पण है,  
नारी—शक्ति के स्वाभिमान का, यह मेरा अर्पण है।

अहिल्या सा धैर्य रखो, और कुंती सा तुम त्याग करो,  
द्रौपदी सी अग्नि बनो, और तारा सा तुम ज्ञान भरो।  
मंदोदरी सा सतीत्व रखो, अधर्म के उस घेरे में,  
तब देखोगे तुम उजाला, अपनी जिंदगी के अंधेरे में।

मैं लिखता हूँ वह संदेश जो, समाज को बदलना चाहता  
है,  
जो नारी के हर एक आँसू को, मोती बनाना चाहता है।  
मेरी कलम का मकसद है—हर घर में एक **‘प्रभा’** जगे,  
ताकि अन्याय की कोई भी छाया, अब कभी न हमें ठगे।

यह महाकाव्य संजीव अब, तुम्हारा ही एक हिस्सा है,  
अहिल्या से मंदोदरी तक, अब तुम्हारा ही यह किस्सा है।  
जागो और जगाओ सबको, इस पावन संदेश के साथ,  
नारी—शक्ति का मान बढ़ाओ, लेकर सबका साथ—साथ।

## ॥ पंचम सर्ग उपसंहार और षष्ठ सर्ग की भूमिका ॥

---

यहाँ पूर्ण हुई वह यात्रा, जो मंदोदरी से समाप्त हुई,  
'पंच प्रभा' की पाँचों किरणों, अब हृदय में व्याप्त हुई।  
मैं संजीव! इन 5 सर्गों में, पाँचों का सत्कार किया,  
अपनी सूक्ष्म लेखनी से, उनका ही विस्तार किया।

पर महाकाव्य अभी आधा है, अभी 5 सर्ग और आने हैं,  
नारीत्व के अन्य रहस्यों को, अब हमको सुलझाने हैं।  
छठा सर्ग बताएगा—कैसे ये पाँचों एक सूत्र में बँधी,  
और कैसे भविष्य की नारी हेतु, इन्होंने अपनी राह सँधी।

अगले सर्ग में देखूँगा मैं, इन पाँचों का दार्शनिक मिलन,  
जहाँ से शुरू होगा—मेरे महाकाव्य का दूसरा चरण।  
मैं संजीव! अपनी लेखनी को, अब नया एक विश्राम दूँ,  
और प्रथम खंड की इस सफलता को, माँ शारदा के नाम  
दूँ।

पाँच प्रभा प्रकाशित हुई, अब पाँच और आएंगी,  
'पंच प्रभा' की यह पूर्ण कथा, अब युगों—युगों तक  
गाएगी।  
पंचम सर्ग को विराम दे, अब षष्ठ की ओर बढ़ूँगा,  
मैं संजीव! अपनी चेतना से, अब नया इतिहास गढ़ूँगा।



खंड –2  
षष्ठम् सर्ग  
पंच—चेतना का महामिलन

---



## ॥ पंच—प्रभा का संगम और लेखक का ध्यान ॥

---

मैं संजीव, अब ले चलता हूँ, एक दिव्य लोक की ओर तुम्हें,  
जहाँ पाँचों ज्योतियाँ मिली हैं, देने नया एक शोर तुम्हें।  
अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी महान,  
एक सूत्र में बंध रही हैं, लेकर अपना—अपना मान।

मैं लिखता हूँ वह अलौकिक, और शांत सा एक वातावरण,  
जहाँ समय भी ठहर गया है, करने इन सबका आचरण।  
पाँचों स्त्रियाँ खड़ीं वहाँ, जैसे पाँच दिशाएँ हों,  
या पीड़ित मानवता की, वे अपनी ही भुजाएँ हों।

मेरी लेखनी उस तेज को, अब एक साथ समेटती,  
इनकी साझा पीड़ाओं को, अब नया अर्थ है भेंटती।  
क्या अंतर है पत्थर होने में, और सुत को खो देने में?  
क्या अंतर है चीरहरण में, और पति—पाप के ढोने में?

मैं संजीव, साक्षी हूँ आज, इस महा—चेतना के मिलन का,  
जो अंत करने आई है अब, नारी—मन के हर जलन का।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, इस महाकाव्य का नया मोड़,  
जहाँ पाँचों नदियाँ मिली हैं, मर्यादा के बंधन तोड़।



## ॥ अहिल्या का मौन और साझा अपमान ॥

---

मैं **संजीव**, सुन रहा हूँ अब, अहिल्या का वह धीमा स्वर,  
जो पूछ रही है सखियों से—क्यों पत्थर हुई मैं उम्र भर?  
इंद्र का छल था, मुनि का कोप, पर दंड केवल मेरा था,  
क्या स्त्री की देह पर ही, अधर्म का सारा घेरा था?

कुंती बोली—बहन! मेरा भी, पत्थर जैसा ही जीवन था,  
लोक—लाज की उस वेदी पर, सुत का किया विसर्जन था।  
तुम्हें शिला बनाया गया, मैं जीती—जागती शिला बनी,  
ममता को दबाकर मैं, बस महलों की एक लीला बनी।

द्रौपदी ने कहा—अपमान तो, मेरा भी उस सभा में हुआ,  
जहाँ पाँचों पतियों का पौरुष, जुए की एक लत में मुआ।  
अहिल्या! तुम तो जड़ हुई, पर मैं तो अग्नि में जलती रही,  
प्रतिशोध की उस ज्वाला में, मैं तिल—तिल करके ढलती  
रही।

मैं लिखता हूँ यह साझा दुख, जो कड़ियों सा जुड़ जाता  
है,  
इतिहास का हर पन्ना अब, नारी के पक्ष में मुड़ जाता है।  
इन पाँचों की व्यथा एक है, बस रूप अलग और काल  
अलग,  
पर पुरुष—सत्ता की सोच का, है वही पुराना जाल अलग।



## ॥ तारा का विवेक और नीति का संवाद ॥

---

मैं संजीव, देख रहा हूँ अब, तारा की वह मेधा प्रखर,  
जो समझा रही है सबको—पीड़ा ही तो है असली घर।  
मैंने बाली को खोया, और सुग्रीव को भी संभाला था,  
कूटनीति की उस राह पर, मैंने ही कुल को पाला था।

मंदोदरी ने हामी भरी—सत्य कहा तुमने ओ तारा!  
मैंने भी तो रावण को, सत्य का ही दिखाया था किनारा।  
पर पुरुष का हठ और अहंकार, जब सीमा को लांघता है,  
तब वह अपने ही विनाश का, स्वयं मार्ग मांगता है।

मैं लिखता हूँ वह मन्त्रणा, जो पाँचों के बीच हो रही,  
नारी की वह बुद्धिमत्ता, जो अब सत्य के बीज बो रही।  
हम केवल भोग्या नहीं हैं, हम तो साम्राज्य की शक्ति हैं,  
हम अधर्म के विरुद्ध खड़ी, साक्षात् ईश्वरीय भक्ति हैं।

मेरी लेखनी इस प्रज्ञा को, अब नया आयाम देती है,  
जो अपनी साझा बुद्धि से, हर संकट को थाम लेती है।  
तारा और मंदोदरी का, वह नीति—ज्ञान अब गूँज रहा,  
अहिल्या और द्रौपदी का मन, अब नया रास्ता ढूँढ़ रहा।

## ॥ द्रौपदी की ज्वाला और प्रतिशोध का औचित्य ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, कृष्णा की आँखों की वह आँच, जो पूछ रही है सबसे—क्या अन्याय की होनी नहीं चाहिए जाँच?

मौन रहना क्या धर्म है? या प्रतिकार ही असली कर्म है? पाषाण बनकर सहते रहना, क्या सतीत्व का ही मर्म है?

कुंती ने कहा—पुत्री! तुम्हारा, क्रोध भी तो एक न्याय था, बिना उस महाविनाश के, कहाँ मिटता यह अन्याय था? मैंने भी तो सुत भेजे रण में, ताकि धर्म की जीत हो, ताकि इस धरती पर फिर से, मानवता की नई रीत हो।

अहिल्या बोली—मैंने सहा, पर तुमने आवाज उठाई थी, तुमने सोई हुई चेतना को, प्रतिशोध की राह दिखाई थी। पाषाण होना मेरी विवशता थी, पर अग्नि होना तुम्हारी शान,  
तुमने ही तो सिखाया जग को, कैसे रखें नारी का मान।

मैं लिखता हूँ वह गर्जना, जो षष्ठम् सर्ग में गूँजती, नारी की वह मुखर शक्ति, जो अब अपना हक ढूँढती। द्रौपदी की वह ज्वाला अब, पाँचों के भीतर व्याप्त हुई, सहनशीलता की वह सीमा, अब पूर्णतः समाप्त हुई।



## ॥ मंदोदरी का सतीत्व और पाप का प्रायश्चित ॥

---

मैं **संजीव**, अब सुनता हूँ, मंदोदरी की वह करुण पुकार, मैंने अधर्म के घर में रहकर, कैसे किया अपना उद्धार? रावण का पाप बढ़ा तो, मैंने लंका का विनाश देखा, अपने ही सुतों के लहू से, रँगा हुआ इतिहास देखा।

तारा ने ढाँढस बंधाया—सखी! तुम तो परम पावन हो, तुम उस अंधियारे गढ़ में, साक्षात् एक विहान हो। विभीषण का राजतिलक, तुम्हारी ही तो एक जीत थी, तुमने ही तो लंका में, फिर से बोई सुख की रीत थी।

मैं लिखता हूँ वह पवित्रता, जो कीचड़ में कमल जैसी है, मंदोदरी की वह तपस्या, सचमुच बड़ी विमल जैसी है। सतीत्व केवल शरीर नहीं, वह तो मन का एक संकल्प है, अधर्म के आगे न झुकना ही, नारी का असली विकल्प है।

पाँचों ने मिलकर माना—सतीत्व ही उनकी असली ढाल, जिसने बचा लिया उन्हें, जब सामने खड़ा था भीषण काल। मेरी लेखनी इस तेज को, अब नया एक विस्तार दे, मंदोदरी के उस धैर्य को, जग का सारा प्यार दे।



## ॥ पंच—कन्या की परिभाषा और ऋषियों का मत ॥

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ, उन प्राचीन ग्रंथों के ज्ञान से, क्यों इन पाँचों को **‘कन्या’** कहा, ऋषियों ने बड़े सम्मान से?

विवाहिता थीं ये सभी, फिर भी कौमार्य का मान मिला, इनके नाम के स्मरण मात्र से, पापों का अवसान मिला।

अहिल्या द्रौपदी कुंती, तारा मंदोदरी तथा...

इस मंत्र के पीछे छुपी है, नारी के गौरव की कथा।

मैं लिखता हूँ वह अर्थ जो, शरीर से ऊपर आत्मा का है, यह कन्या रूप तो साक्षात्, अंश उस परमात्मा का है।

इनका चरित्र अग्नि में तपकर, और भी उज्ज्वल हुआ, इनकी पवित्रता के आगे, सारा जग ही निश्छल हुआ। ऋषियों ने समझा था कि, नारी देह से बढ़कर है, उसका संकल्प और उसका चरित्र, सबसे ऊँचा शिखर है।

मेरी कविता इस मंत्र को, **‘पंच प्रभा’** का आधार कहे, जो सदियों से दे रहा हमें, **‘नारीत्व का सार’** कहे। मैंने **‘पंच—प्रभा’** के इसी भाव से, इस रहस्य को खोला है, पाँचों के उस संयुक्त रूप को, अपनी वाणी में बोला है।

## ॥ पुरुष सत्ता और नारी का संघर्ष ॥

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ, इतिहास के उस कटघरे में,  
जहाँ पुरुष का अहंकार खड़ा, सत्ता के उन घेरे में।  
गौतम हों या रावण, बाली हों या दुर्योधन का दल,  
सबने नारी को समझा बस, अपनी जीत का एक फल।

पाँसे में द्रौपदी हारी, और पत्थर हुई अहिल्या वहाँ,  
कुंती को छोड़ना पड़ा सुत, लोक—लाज के डर से जहाँ।  
मैं लिखता हूँ वह कड़वा सच, जो आज भी नहीं बदला  
है,  
नारी को वस्तु समझने का, यह खेल पुराना और गहरा  
है।

पाँचों नारियों ने मिलकर, इस सत्ता को ललकारा है,  
अपने आत्मबल के आगे, हर अहंकारी को मारा है।  
हम अबला नहीं, हम तो—सृष्टि की असली जननी हैं,  
हम ही तो इस ब्रह्मांड की, सबसे प्रखर धरनी हैं।

मेरी लेखनी इस संघर्ष को, अब शब्दों की तलवार दे,  
जो पुरुष के उस मिथ्या गर्व का, समूल ही संहार करे।  
षष्ठम् सर्ग की यह चेतना, अब युद्ध का ऐलान है,  
नारी के अपने अस्तित्व की, यह नई एक पहचान है।



## ॥ ममता और बलिदान की साझा व्यथा ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, कुंती और मंदोदरी का मेल,  
दो माताओं ने देखा था, अपनों के ही विनाश का खेल।  
कुंती ने कर्ण को खोया, और मंदोदरी ने मेघनाद को,  
दोनों ने ही सहा था—मृत्यु के उस भीषण नाद को।

कैसी है यह नियति कि माँ, ही सदा बलि चढ़ती है?  
क्यों युद्ध की वेदी पर, ममता ही सदैव लड़ती है?  
मैं लिखता हूँ वह आंसू, जो दोनों की आँखों में एक है,  
पुत्र—शोक की वह पीड़ा, जिसका न कोई भेष है।

द्रौपदी ने भी खोए सुत, अश्वत्थामा के उस वार में,  
तारा ने देखा अंगद को, अनाथ होते उस संसार में।  
पाँचों का वह मातृत्व आज, एक साथ सिसक रहा,  
युद्ध की उस विभीषिका में, सबका धैर्य अब खिसक रहा।

मेरी कविता इस बलिदान को, नारी का सबसे बड़ा दान  
कहे,  
जो अपने हृदय के टुकड़ों को दे, रखती **‘राष्ट्र का मान’**  
कहे।

ममता की वह महानता, अब षष्ठम् सर्ग का प्राण है,  
नारी के उस कोमल हृदय का, यह पावन व्याख्यान है।

## ॥ भविष्य की नारी और पंच—प्रभा का संदेश ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, आज की उस नारी का मुख,  
जो इन पाँचों प्रभाओं से, पा रही है नया एक सुख।  
ओ आज की अहिल्या! तू अब पत्थर मत होना कभी,  
अन्याय के उस शाप को, तू सहना मत अब कभी।

ओ आज की द्रौपदी! तू अपनी, आवाज को बुलंद कर,  
अधर्म के उस दुःशासन का, तू आज ही अंत कर।  
मैं लिखता हूँ वह प्रेरणा, जो इन कथाओं से आती है,  
जो आज की हर बेटी को, लड़ना अब सिखाती है।

तारा की मेधा अपनाओ, और कुंती सा धीरज धरो,  
मंदोदरी की शुचिता लेकर, तुम नए शिखर पर कदम भरो।  
ये पाँचों कल की याद नहीं, ये तो आने वाले कल का  
प्रकाश हैं,  
इनके पद—चिह्नों पर चलकर ही, मिटता हर त्रास है।

मेरी लेखनी इस संदेश को, 'पंच प्रभा' का लक्ष्य कहे,  
जो आधुनिक युग की नारी को, निर्भय और सक्ष्य कहे।  
षष्ठम् सर्ग की ये रश्मियाँ, अब मशाल बन चुकी हैं,  
अंधियारे इस समाज में, ये ढाल बन चुकी हैं।



## ॥ नियति और संघर्ष का दार्शनिक मिलन ॥

---

मैं **संजीव**, अब चिंतन करता, नियति के उस क्रूर जाल पर,  
जिसने आघात किए थे, इन पाँचों के पावन भाल पर।  
पर संघर्ष ही तो था वह, जिसने इन्हें '**प्रभा**' बनाया,  
कठिन परीक्षाओं ने ही तो, इनका असली रूप सजाया।

सोना तपकर ही कुंदन बनता, और हीरा घिसकर चमकता है,  
नारी का यह व्यक्तित्व भी, दुखों में ही दमकता है।  
मैं लिखता हूँ वह दर्शन, जो पीड़ा को शक्ति बनाता है,  
जो हारकर भी गिरना नहीं, बस उठना ही सिखाता है।

अगर अहिल्या पत्थर न होती, तो राम को कैसे पाती?  
अगर द्रौपदी अपमानित न होती, तो महाभारत कैसे रचाती?

नियति के हर एक प्रहार में, एक गूढ़ संदेश छुपा था,  
इन पाँचों की हर एक आह में, विधाता का लेख छुपा था।

मेरी कविता इस दर्शन को, '**जीवन—संग्राम**' का नाम दे,  
जो थके हुए मुसाफिरों को, थोड़ा सा विश्राम दे।  
षष्ठ सर्ग की यह गहराई, अब आत्मा को छूती है,  
नारी के इस संघर्ष से ही, यह सृष्टि अब गूँथी है।



## ॥ पाँचों का राम और कृष्ण से नाता ॥

---

मैं **संजीव**, अब जोड़ रहा हूँ, भक्ति का वह पावन तार,  
जिसने इन पाँचों का किया था, समय—समय पर उद्धार।  
अहिल्या को राम मिले, और द्रौपदी का कृष्ण सखा हुआ,  
मंदोदरी और तारा का भी, प्रभु चरणों में ही उद्धार हुआ।

कुंती ने तो जीवन भर, बस कृष्ण का ही ध्यान किया,  
अपने हर एक संकट में, उसी का आह्वान किया।  
मैं लिखता हूँ वह शरणागति, जो शक्ति का आधार है,  
बिना उस दिव्य कृपा के, कहाँ मिलता निस्तार है।

परमात्मा भी नतमस्तक थे, इन नारियों के त्याग पर,  
वे स्वयं दौड़े आए थे, इनकी एक करुण राग पर।  
नारी और नारायण का, यह रिश्ता बड़ा अनूठा है,  
जिसके आगे इस जग का, हर वैभव बिल्कुल झूठा है।

मेरी लेखनी इस भक्ति को, समर्पण का शिखर कहे,  
जहाँ भक्त और भगवान का, मिलन सदा अमर रहे।  
षष्ठम् सर्ग का यह आध्यात्मिक, पक्ष अब प्रखर होता है,  
नारी के इस विश्वास से ही, जग में नया सवेरा होता है।



## ॥ लोक-लाज और मर्यादा की बेड़ियाँ ॥

---

मैं **संजीव**, अब बात करूँ, उस समाज की उन बेड़ियों की, जिन्होंने उम्र भर रोकी राहें, इन महान श्रेणियों की। कुंती को डर था समाज का, तब कर्ण को जल में छोड़ा था,  
लोक-लाज की उस दीवार ने, ममता का रुख मोड़ा था।

सीता को अग्नि देनी पड़ी, और अहिल्या को शाप मिला, नारी की मर्यादा पर ही, क्यों सदा यह विलाप मिला? मैं लिखता हूँ वह बेड़ियाँ, जो आज भी पाँव जकड़ती हैं, जो नारी की उड़ान को, हर मोड़ पर अब पकड़ती हैं।

पाँचों ने मिलकर तोड़ी हैं, वे सोच की पुरानी जंजीरें, अपने रक्त और आंसुओं से, लिखी हैं नई तकदीरें। मर्यादा पुरुष के लिए क्यों नहीं? क्यों केवल नारी के लिए? यह प्रश्न गूँज रहा है आज, इस जग की अटारी के लिए।

मेरी कविता इस विद्रोह को, न्याय की एक माँग कहे, जो समाज के उन दोगले, **‘नियमों का अब स्वांग’** कहे। षष्ठम् सर्ग की यह चेतना, अब मुक्त होना चाहती है, नारी के अपने स्वतंत्र, आकाश को पाना चाहती है।



## ॥ शक्ति का जागरण और चंडी का रूप ॥

---

मैं संजीव, अब देख रहा हूँ, कोमलता के पीछे की वह शक्ति,

जो समय आने पर बन जाती, साक्षात विनाश की भक्ति ।  
द्रौपदी जब चंडी बनी, तो कुरुवंश का अंत हुआ,  
तारा ने जब बुद्धि दिखाई, तो किष्किंधा का वसंत हुआ ।

नारी केवल फूल नहीं, वह तो काँटों की बाड़ भी है,  
वह सृजन की देवी है, तो प्रलय की दहाड़ भी है ।  
मैं लिखता हूँ वह रौद्र रूप, जो अन्याय को भस्म करे,  
जो अपनी अस्मिता की खातिर, काल से भी रस्म करे ।

मंदोदरी ने रावण को टोका, वह भी तो एक साहस था,  
अहिल्या का वह मौन तप, भी तो एक आत्म-विश्वास था ।  
पाँचों के भीतर छिपी है—वह माँ दुर्गा की प्रखर ज्वाला,  
जिसने अधर्म के हर असुर का, किया है अब बोलबाला ।

मेरी लेखनी इस शक्ति को, 'नारी-शक्ति' का मंत्र कहे,  
जो इस जड़ समाज को, बनाने चली अब स्वतंत्र कहे ।  
षष्ठम् सर्ग का यह ओज अब, पन्नों से बाहर आता है,  
नारी के उस प्रचंड रूप का, दर्शन अब कराता है ।





## ॥ इतिहास के धुंधले पन्ने और लेखक की दृष्टि ॥

---

मैं **संजीव**, अब खोज रहा हूँ, उन पन्नों को जो खो गए,  
जहाँ इन महान नारियों के, जीवन संघर्ष कहीं सो गए।  
इतिहास ने केवल पुरुषों को गाया, उनकी विजय की गाथा  
लिखी,  
पर इन पाँचों के बलिदान की, कहीं किसने कोई व्याख्या  
लिखी?

मैंने अपनी इस लेखनी से, उन मौन स्वरों को स्वर दिया है,  
इनके उपेक्षित जीवन में, अब गौरव का सम्पूर्ण रंग भरा है।  
मैं लिखता हूँ वह सच जो, आँखों से ओझल रहा सदा,  
नारी का वह मूक योगदान, जो विस्तृत ही रहा सदा।

अहिल्या की शिला के पीछे, छिपी थी एक महान सती,  
कुंती के राजसी ठाठ के पीछे, सिसक रही थी एक नियति।  
मेरी कविता इन धुंधले पन्नों को, अब साफ करती है,  
इतिहास की उन गलतियों को, अब ये माफ करती है।

मैंने अपना उत्तरदायित्व माना है, कि मैं सच को सामने  
लाऊँ,  
नारी के इस महा-काव्य को, पूरी दुनिया को सुनाऊँ।  
षष्ठम् सर्ग की यह दृष्टि अब, एक नया दृष्टिकोण है,  
जहाँ पुरुष नहीं, नारी ही अब, इस कथा का कोण है।



## ॥ पंच—प्रभा और प्रकृति का संबंध ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, प्रकृति के उन पाँचों तत्वों को,

जो प्रतिबिंबित करते हैं, इन महान नारीत्वों को।

अहिल्या पृथ्वी सी अडिग, जो सहती रही हर एक भार,  
द्रौपदी अग्नि सी प्रज्वलित, जो करती अधर्म का संहार।

कुंती जल सी प्रवाहमान, जो ममता की धार बहाती रही,  
तारा वायु सी सूक्ष्म मेधा, जो नीति की राह दिखाती रही।  
मंदोदरी आकाश सी विशाल, जो सतीत्व का विस्तार बनी,  
इन पाँचों तत्वों से ही तो, यह सृष्टि आज साकार बनी।

मैं लिखता हूँ वह गहरा नाता, जो नारी और प्रकृति का है,

दोनों ही सृजन की धुरी हैं, यही सत्य संस्कृति का है।

जब—जब नारी अपमानित हुई, प्रकृति ने भी प्रलय किया,

जब—जब वह सम्मानित हुई, तब—तब जग ने अभय लिया।

मेरी लेखनी इस साम्यता को, **‘पंच—प्रभा’** का प्राण कहे,  
जो नारी को प्रकृति का, **‘साक्षात एक वरदान’** कहे।

षष्ठम् सर्ग की यह व्यापकता, अब ब्रह्मांड को छूती है,  
नारी की इस ऊर्जा से ही, यह सारी दुनिया गूँथी है।



## ॥ आधुनिक नारी के द्वंद्व और पंच—प्रभा का सहारा ॥

---

मैं **संजीव**, अब बात करूँ, आज की उन कामकाजी नारियों की,  
जो उलझी हैं घर और बाहर की, अनगिनत जिम्मेदारियों की।  
कभी अहिल्या सा मौन उन्हें भी, धारण करना पड़ता है,  
तो कभी द्रौपदी बन समाज से, हर कदम पर लड़ना पड़ता है।

कुंती सा द्वंद्व उनके मन में, अक्सर आज उमड़ता है,  
जब कैरियर और परिवार के बीच, स्वयं से लड़ना पड़ता है।  
मैं लिखता हूँ वह आधुनिक पीड़ा, जो इन पाँचों से जुड़ती है,  
आज की नारी भी अब, अपनी जड़ों की ओर मुड़ती है।

तारा से सीखती है वह—कैसे ऑफिस और घर को संभाले,  
मंदोदरी से सीखती है—कैसे मूल्यों को मन में पाले।  
ये पाँचों प्रभाएँ आज भी, हमारी सबसे बड़ी गुरु हैं,  
इनके जीवन से ही तो, आज के नए संघर्ष शुरू हैं।

मेरी कविता इस प्रासंगिकता को, **‘युगों का एक सेतु’**  
कहे,  
जो आज की हर स्त्री को, अपनी ही एक प्रति—छवि कहे।  
षष्ठम् सर्ग की यह चेतना, अब हमारे समय में आई है,  
इन पाँचों के रूप में ही तो, हमने अपनी राह पाई है।

## ॥ आत्म—संवाद और आध्यात्मिक अनुभूति ॥

मैं **संजीव**, जब पहुँचता हूँ, इस सर्ग के इस ऊँचे मुकाम पर,

लगता है जैसे लिख रहा हूँ, मैं स्वयं अपने ही नाम पर।  
मेरी आत्मा इन पाँचों में, अब कहीं विलीन हो गई है,  
इनकी साझा पीड़ा ही तो, मेरी कविता की लय हो गई है।

मैं न व्यक्ति रहा, न कवि रहा, मैं तो बस एक माध्यम हूँ,  
इनकी दबी हुई पीड़ाओं का, मैं ही तो अब संगम हूँ।  
मैं लिखता हूँ वह स्पंदन, जो मेरे हृदय में होता है,  
जब भी कोई नारी पात्र, मेरे शब्दों में अब रोता है।

यह महाकाव्य मेरी तपस्या है, मेरा अपना एक जागरण है,  
नारी—शक्ति के चरणों में, यह मेरा ही समर्पण है।  
षष्ठ सर्ग की यह गहराई, अब मुझे भी बदल रही,  
मेरे भीतर की जड़ता भी, अब चेतना में ढल रही।

मैं **संजीव** पाया हूँ कि, लिखना भी एक योग है,  
नारी—शक्ति का यह गुणगान, सबसे बड़ा संयोग है।  
मेरी लेखनी धन्य हुई, इस महा—मिलन को पाकर,  
इन पाँचों की साझा ज्योति को, अपने मन में सजाकर।



## ॥ प्रेम, करुणा और क्षमा का महासागर ॥

---

मैं संजीव, अब देख रहा हूँ, इन पाँचों का वह विशाल हृदय,

जहाँ घृणा की जगह केवल, प्रेम का ही होता है उदय।  
अहिल्या ने गौतम को क्षमा किया, और कुंती ने बेटों को,  
द्रौपदी ने भी अंत में, भुला दिया उन सब भेटों को।

तारा और मंदोदरी ने भी, अपनों के अपराधों को सहा,  
और करुणा की उस धारा में, हर एक कड़वाहट को बहा।  
मैं लिखता हूँ वह क्षमा, जो कायरता नहीं, शक्ति है,  
जो प्रतिशोध से भी ऊपर, एक दिव्य आध्यात्मिक भक्ति है।

नारी का हृदय ही है वह, जहाँ दुनिया को पनाह मिलती है,  
उसी की ममता की छाँव में, हर एक कली खिलती है।  
इन पाँचों ने दिखाया कि, कैसे आंसुओं को अमृत बनाना  
है,  
कैसे इस उजड़े हुए जग को, फिर से एक उपवन बनाना  
है।

मेरी लेखनी इस करुणा को, ‘पंच—प्रभा’ का सार कहे,  
जो घृणा के इस मरुस्थल में, प्रेम की एक फुहार कहे।  
षष्ठम् सर्ग का यह कोमल पक्ष, अब सबको शांत करता  
है,  
नारी के उस दिव्य प्रेम से, सबका हृदय अब भरता है।



## ॥ अखंड भारत और नारी-शक्ति का गौरव ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, इस भारत भूमि का वह गौरव, जहाँ इन पाँचों के चरित्र से, महक रहा है सारा सौरव। मिथिला से लंका तक, और हस्तिनापुर से किष्किंधा तक, नारी-शक्ति की यह पताका, फहरा रही है अब चहुँओर तक।

इन्हीं पाँचों ने गढ़ा है—इस राष्ट्र का नैतिक आधार, इनके बिना अधूरा होता, हमारा यह सारा संसार। मैं लिखता हूँ वह अखंडता, जो इन पाँचों से जुड़ती है, भारत की वह सांस्कृतिक धारा, इन्हीं की ओर मुड़ती है।

जब तक अहिल्या और द्रौपदी, इस माटी में पूजी जाएँगी, तब तक अधर्म की शक्तियाँ, कभी न जीत पाएँगी। मेरी कविता इस गौरव को, **‘राष्ट्र की एक शान’** कहे, नारी-शक्ति ही है वह, जो भारत की असली पहचान कहे।

षष्ठम् सर्ग का यह राष्ट्र-प्रेम, अब सबको जगाता है, नारी के उस योगदान का, दर्शन अब कराता है। मैं **संजीव**, इसी भाव से, इस सर्ग को बुना हूँ, भारत की उन महान आत्माओं को, अपनी लेखनी से चुना हूँ।



## ॥ षष्ठम् सर्ग उपसंहार और सप्तम सर्ग की ओर ॥

---

यहाँ पूर्ण हुआ वह सर्ग, जहाँ पाँचों प्रभाएँ मिलीं,  
जहाँ विचारों की नई कलियाँ, एक साथ यहाँ खिलीं।  
मैं **संजीव**, इस अध्याय में, इनकी साझा आत्मा को गाया,  
इनके महान संघर्षों का, एक दार्शनिक रूप सजाया।

अब षष्ठम् सर्ग को विराम दे, मैं सप्तम की ओर बढ़ूँगा,  
जहाँ इन पाँचों के जीवन के, उत्तरार्ध की कथा गढ़ूँगा।  
सातवाँ सर्ग बताएगा—कैसे इन्होंने समय को जीता,  
और कैसे इनके बाद का युग, इन स्मृतियों में बीता।

यात्रा अभी लंबी है, अभी चार और सर्ग बाकी हैं,  
**‘पंच प्रभा’** की पूर्ण आभा की, अभी झाँकी बाकी है।  
मेरी लेखनी तैयार है, नए संकल्पों के साथ,  
नारी—शक्ति के इस महा—यज्ञ में, लेकर सबका साथ।

मैं **संजीव**, अपनी वाणी को, अब और प्रखर बनाऊँगा,  
महाकाव्य के अगले पड़ाव को, अब जग को सुनाऊँगा।  
षष्ठम् सर्ग संपन्न हुआ, अब सप्तम की है बारी,  
नारी—गौरव की यह गाथा, अब होगी और भी भारी।



## सप्तम सर्ग समय का साक्ष्य और उत्तर—गाथा

---





## ॥ समय का प्रवाह और स्मृतियों का शेष ॥

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, काल—प्रवाह के ऊँचे पुल पर,  
जहाँ युग बदल रहे हैं पर, यादें जमी हैं उन पथ पर।  
त्रेता बीता, द्वापर आया, और कलयुग की पदचाप हुई,  
पर इन पाँचों की गाथा तो, जन—मन में अब भी व्याप्त हुई।

मैं लिखता हूँ वह अवशेष, जो इन नारियों ने छोड़ा है,  
जिन्होंने इतिहास की धारा को, अपनी शक्ति से मोड़ा है।  
अहिल्या का वह पत्थर होना, अब एक मिसाल बन गया,  
समाज के हर अन्याय हेतु, वह एक बड़ा सवाल बन गया।

मेरी लेखनी समय के उन, धुंधले पन्नों को झाड़ती,  
नारीत्व के उन स्वर्णिम, अक्षरों को अब है ताड़ती।  
समय बीत जाता है पर, संघर्ष कभी नहीं मरता,  
नारी का वह आत्मबल ही, काल को है छोटा करता।

मैं **संजीव**, साक्षी हूँ आज, उन अमिट पद—चिह्नों का,  
जो गवाही दे रहे हैं आज, इन पाँचों महान दिनों का।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, इस सर्ग की भूमिका महान,  
जहाँ समय स्वयं दे रहा है, इन पाँचों को अपना सम्मान।

## ॥ अहिल्या का पुनरागमन और ऋषि-कुल का पश्चाताप ॥

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, गौतम ऋषि का वह आश्रम शांत,  
जहाँ अहिल्या के स्पर्श से, अब मिट गया था सारा क्लान्त।  
शिला से फिर वह नारी बनी, और राम का आशीष पाया,  
पर क्या समाज ने उसे फिर से, वही पुराना मान सजाया?

ऋषि-कुल के वे विद्वान भी, अब नतमस्तक खड़े वहाँ थे,  
जिन्होंने कभी अहिल्या पर, उठाए प्रश्न और बाण यहाँ थे।  
मैं लिखता हूँ वह पश्चाताप, जो समाज को करना पड़ा,  
एक निर्दोष सती के आगे, सबको अब झुकना पड़ा।

सत्य को दबाया जा सकता, पर मिटाया कभी नहीं जाता,  
अहिल्या का वह पावन चरित्र, अब सबको राह दिखाता।  
मेरी लेखनी इस शुद्धि को, **‘न्याय की एक जीत’** कहे,  
कि बिना दोष के दंड देना, अधर्म की ही रीत रहे।

अहिल्या अब मौन नहीं, वह तो—एक नई प्रेरणा है,  
जिसने सिखाया कि कैसे, हर अपमान को सहना है।  
सप्तम सर्ग का यह प्रकाश, अब अंधियारे को चीरता,  
अहिल्या के उस चरित्र में, अब दिखती नई गम्भीरता।



## ॥ कुंती का वैराग्य और हस्तिनापुर का विछोह ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, राजमाता का वह त्यागी रूप, जहाँ महलों के सुख उसे लगते, अब काँटों के समान कुरूप ।

पांडव राजा बन गए, पर कुंती का मन अब वन में था, कर्ण के उस बिछोह का गम, अब भी उसके तन—मन में था ।

अब बहुत हुआ यह राज्य—भोग, अब ईश्वर की शरण चाहिए,

इस अशांत हुए हृदय को, अब भक्ति का वरण चाहिए । मैं लिखता हूँ वह अंतिम विदा, जब कुंती ने महल छोड़ा, धृतराष्ट्र और गांधारी संग, उसने अपना नाता जोड़ा ।

पुत्रों ने रोका बहुत, पर माँ का संकल्प अटल रहा, ममता और कर्तव्य के बीच, उसका मार्ग अब सफल रहा । मेरी कविता इस वैराग्य को, सबसे ऊँचा स्थान दे, जो सत्ता के शिखर पर भी, त्याग का नया आयाम दे ।

कुंती चली गई वन को, लेकर अपनी यादों का भार, उसने सिखाया कि अंत में, केवल भक्ति ही है आधार । सप्तम सर्ग की यह धारा, अब वैराग्य की ओर बढ़ी, कुंती के उस त्याग से ही, लगी एक नई तप—कड़ी ।



## ॥ द्रौपदी का उत्तर—जीवन और पांडवों का अवसाद ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, विजय के बाद की वह रिक्तता, जहाँ द्रौपदी की आँखों में, थी केवल एक विरक्तता। पाँचों सुत खो दिए, और खो दिया वह सारा कुल, सिंहासन पर बैठकर भी, उसका हृदय था व्याकुल।

क्या इसी रक्त—पात हेतु, मैंने वे केश खोले थे?  
क्या इसी सूनी गोद हेतु, हमने मृत्यु—मंत्र बोले थे?  
मैं लिखता हूँ वह कड़वा सच, जो जीत के बाद आता है,  
अधर्म को मारने वाला भी, बहुत कुछ खो जाता है।

द्रौपदी अब पटरानी थी, पर मन उसका सन्यासी था,  
उसकी वह प्रखर ज्वाला अब, भक्ति की ही प्यासी थी।  
मेरी लेखनी इस पीड़ा को, **‘विजय का एक शोक’** कहे,  
जहाँ प्रतिशोध की तृप्ति भी, अब केवल एक टोक कहे।

द्रौपदी ने सम्भाला राज्य, पर दूरी उसने बना ली,  
संसार के इस वैभव से, उसने अपनी राह चुरा ली।  
सप्तम सर्ग का यह मोड़ अब, दार्शनिक रूप लेता है,  
जीत और हार के अंतर का, यह नया बोध देता है।



## ॥ तारा की राजनीति और अंगद का स्वर्ण-युग ॥

---

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, किष्किंधा के उस नए काल में,

जहाँ तारा की बुद्धि चमकी, प्रशासन के हर एक हाल में।  
अंगद राजा बने, पर नीति—तारा की ही गूँजती थी,  
प्रजा के हर एक संकट को, वह मेधा ही तो बूझती थी।

वानर कुल में शांति आई, और न्याय का सूरज खिला,  
तारा की उस मन्त्रणा का ही, यह सारा मधुर फल मिला।  
मैं लिखता हूँ वह राजमाता, जो नारीत्व का गौरव बनी,  
संकटों के बीच रहकर भी, जो नीति की एक सौरव बनी।

उसने सिखाया कि शक्ति का, सही उपयोग कैसे हो,  
शत्रु को भी मित्र बनाने का, वह दिव्य योग कैसे हो।  
मेरी कविता इस बुद्धिमानी को, **‘शासन का आधार’** कहे,  
जो बिना शस्त्र उठाए भी, करती सबका उद्धार कहे।

तारा की वह प्रखर मेधा, अब इतिहास का साक्ष्य हुई,  
उसकी हर एक सीख अब, राजनीति का भाष्य हुई।  
सप्तम सर्ग का यह नेतृत्व, अब नई दिशा दिखाता है,  
नारी की कूटनीति का, दर्शन अब सबको कराता है।



## ॥ मंदोदरी का लंका—सुधार और विभीषण का संबल ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, नई लंका का वह नूतन रूप,  
जहाँ विभीषण राजा थे, पर मंदोदरी थी शक्ति अनूप।  
असुर संस्कृति को त्यागकर, अब धर्म की राह चली,  
मंदोदरी के प्रयासों से, लंका की हर कली अब खिली।

उसने राक्षसी प्रवृत्तियों को, मानव मूल्यों में बदला,  
रावण के उस पाप—भवन को, पावन गृहों में बदला।  
मैं लिखता हूँ वह परिवर्तन, जो सतीत्व से संभव हुआ,  
मंदोदरी का हर एक वचन, अब लोक—कल्याण का भव हुआ।

पाप व्यक्ति में होता है, कुल में या राष्ट्र में नहीं,  
यह पाठ उसने पढ़ाया, जो अब तक सुना कहीं नहीं।  
मेरी लेखनी इस सुधार को, **‘नारी की एक जीत’** कहे,  
जो शत्रुओं के गढ़ में भी, बोती प्रेम की रीत रहे।

मंदोदरी की वह साधना, अब लंका का आधार बनी,  
उसकी शुचिता और दया, सबका नया श्रृंगार बनी।  
सप्तम सर्ग का यह उत्थान, अब गौरव को पाता है,  
अधर्म के विनाश के बाद, धर्म का सूरज उगाता है।



## ॥ ऐतिहासिक प्रभाव और समाज की सोच ॥

---

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ, इन पाँचों के जाने के बाद,  
क्या बदला था समाज? या रहा वही पुराना उन्माद?  
ग्रंथों ने इन्हें पूजा, पर क्या मानव ने इन्हें समझा?  
क्या इनकी पीड़ाओं को, अपनी सोच में कहीं उलझा?

इतिहास साक्षी है कि, इन पाँचों ने एक राह दी,  
अन्याय के विरुद्ध लड़ने की, एक नई पनाह दी।  
मैं लिखता हूँ वह बदलाव, जो इनकी गाथाओं से आया,  
नारी को वस्तु समझने वालों ने, अपना ही सिर झुकाया।

सतीत्व और मेधा का, जो नया संगम यहाँ हुआ,  
उसने इस जड़ समाज को, अंदर तक ही छुआ।  
मेरी कविता इस प्रभाव को, **‘पंच—प्रभा’** की शक्ति कहे,  
जो सदियों तक देती रही, नारीत्व को नई भक्ति कहे।

समाज की उन बेड़ियों को, इन पाँचों ने ही तोड़ा था,  
नारी के प्रति दृष्टिकोण को, एक नया रुख मोड़ा था।  
सप्तम सर्ग की यह चेतना, अब व्यापक होने वाली है,  
इनके जीवन की उत्तर—कथा, अब सबको जगाने वाली है।

## ॥ महाप्रस्थान की बेला और पार्थिव देह का त्याग ॥

---

मैं **संजीव**, अब लिखता हूँ वह, करुण और पावन विदाई, जब एक—एक कर इन पाँचों ने, अपनी अंतिम साँस पाई। कोई वन में शांत हुई, कोई हिमालय की गोद में सोई, पर इनकी अमर गाथा को, अब न भुला सका यहाँ कोई।

कुंती ने अग्नि—शिखा में, अपना शरीर विलीन किया, द्रौपदी ने बर्फ के बीच, अपना महा—प्रयाण किया। मैं लिखता हूँ वह शांति, जो इनके मुख पर छाई थी, जैसे अपनी सारी जिम्मेदारियाँ, इन्होंने पूर्ण निभाई थी।

अहिल्या, तारा और मंदोदरी भी, निज धाम को चली गईं, पर इस धरती की माटी में, अपनी खुशबू को दे गईं। मेरी लेखनी इस विदा को, मृत्यु नहीं, '**मोक्ष**' कहे, जहाँ आत्मा अपने परमात्मा के, पावन दर्शन को लहे।

सप्तम सर्ग का यह समापन, अब आँसू और श्रद्धा का है, इन पाँचों महान आत्माओं की, यह अंतिम विधा का है। देह चली गई पर इनका, तेज अब भी यहीं खड़ा है, इनका व्यक्तित्व तो स्वयं, इस आकाश से भी बड़ा है।





## ॥ उत्तराधिकारियों का उत्तरदायित्व और नई पीढ़ी ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, अंगद, पांडव और विभीषण को,  
जिन्होंने संभाला था आगे, इन पाँचों के इस मिशन को।  
माताओं की शिक्षाएँ ही, उनके राज्य का सार थीं,  
वही तो उनके जीवन की, असली और बड़ी पतवार थीं।

परीक्षित के राज्य में भी, कुंती और द्रौपदी की गूँज थी,  
लंका की हर नीति में, मंदोदरी ही एक पुंज थी।  
मैं लिखता हूँ वह विरासत, जो इन नारियों ने सौंपी है,  
सत्य और न्याय की वह नींव, जो इन्होंने ही रोपी है।

नयी पीढ़ी ने सीखा कि, कैसे मान नारी का रखना है,  
शक्ति और सत्ता के बीच, कैसे मर्यादा को चखना है।  
मेरी कविता इस उत्तराधिकार को, '**संस्कृति का प्राण**'  
कहे,  
जो आने वाले युगों हेतु, एक महान व्याख्यान कहे।

सप्तम सर्ग की यह निरंतरता, अब भविष्य को गढ़ रही,  
इन पाँचों के पद-चिह्नों पर, अब नई दुनिया बढ़ रही।  
मैं **संजीव**, पाया हूँ कि, प्रभाव कभी नहीं मिटता,  
सच्चा नेतृत्व वही है, जो युगों तक नहीं है छँटता।



## ॥ अहिल्या की शिला और आधुनिक स्त्री का मौन ॥

---

मैं **संजीव**, आज भी देखता हूँ, अहिल्या को कई चेहरों में, जो कैद हैं आज भी, समाज के उन अँधेरे घरों में। मौन रहकर जो सहती हैं, वे आज की पत्थर नारियाँ, क्या राम का इंतजार है उन्हें? या खुद लड़ेंगी ये क्यारियाँ?

अहिल्या की उत्तर—गाथा कहती—मौन भी एक शक्ति है, पर जड़ता को तोड़ना ही, असली आध्यात्मिक भक्ति है। मैं लिखता हूँ वह आह्वान, जो अहिल्या के माध्यम से आता, अपनी सोई हुई चेतना को, अब हर स्त्री को जगाना सुहाता।

आज की नारी पत्थर नहीं, वह तो—चेतन एक ज्वालामुखी है, जिसे दबाकर रखा गया, वही अब सबसे बड़ी सुखी है। मेरी लेखनी इस साक्ष्य को, **‘परिवर्तन का मंत्र’** कहे, जो हर शोषित नारी को, बनाने चला अब स्वतंत्र कहे।



अहिल्या का वह शाप अब, एक वरदान में बदल चुका, उसके संघर्ष का वह सूरज, अब सबके मन में ढल चुका। सप्तम सर्ग की यह दृष्टि अब, वर्तमान को छूती है, अहिल्या की वह पावन शिला, अब प्रेरणा बन गूँथी है।

## ॥ कुंती की ममता और युद्ध के विरुद्ध स्वर ॥

मैं **संजीव**, अब कुंती के, उन आंसुओं से पूछता हूँ,  
क्या युद्ध ही विकल्प है? मैं इस प्रश्न को ढूँढता हूँ।  
कुंती की उत्तर—गाथा में, शांति का एक बड़ा संदेश है,  
जिसने देखा अपने ही कुल का, होता हुआ यह अवशेष  
है।

पुत्रों! शस्त्र उठाने से पहले, माँ की गोद को याद करो,  
विनाश की इस राह पर चलकर, न अपना जीवन बर्बाद  
करो।

मैं लिखता हूँ वह विलाप, जो आज भी सरहदों पर गूँजता,  
हर माँ का हृदय आज भी, शांति का मार्ग है ढूँढता।

कुंती ने जो सहा, वह—इस जगत की सबसे बड़ी पीड़ा  
थी,

जहाँ भाइयों के बीच ही, सत्ता की वह क्रूर क्रीड़ा थी।  
मेरी कविता इस ममता को, '**शांति की एक ढाल**' कहे,  
जो हर आने वाले युद्ध का, अब समूल ही काल कहे।

सप्तम सर्ग की यह पुकार अब, विश्व—कल्याण की ओर  
है,

कुंती की उस करुणा में ही, अब मानवता का शोर है।  
मैं **संजीव**, इसी भाव से, यह शांति—मंत्र यहाँ लिखा,  
कुंती के उस त्याग से ही, मैंने यह नया सच सीखा।



## ॥ द्रौपदी की अग्नि और न्याय की निरंतरता ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, द्रौपदी के उन खुले केशों को, जिन्होंने बदल दिया था हमेशा, भारत के उन परिवेशों को। उसकी उत्तर-गाथा सिखाती-अन्याय सहना ही पाप है, और अपनी गरिमा हेतु लड़ना, सबसे बड़ा जाप है।

आज भी जब किसी नारी का, मान कहीं पर लुटता है, द्रौपदी का वह प्रखर रूप, फिर से कहीं पर उठता है। मैं लिखता हूँ वह ज्वाला, जो अब कभी नहीं बुझेगी, नारी के अपने हक की लड़ाई, अब खुद ही सुलझेगी।

वह केवल एक रानी नहीं, वह तो-न्याय की मशाल थी, जिसके अपमान की अग्नि ही, कुरुवंश का काल थी। मेरी लेखनी इस निरंतरता को, '**युग-परिवर्तन**' कहे, जो हर दुःशासन के विरुद्ध, एक अनवरत सी विजय कहे।

सप्तम सर्ग की यह अग्नि अब, हर मन में प्रज्वलित है, द्रौपदी की वह प्रतिज्ञा, अब पूरे जग में ललित है। मैं **संजीव**, इसी ओज से, यह नया अध्याय बुना, द्रौपदी की उस हुंकार को, अपनी आत्मा से सुना।



## ॥ तारा का ज्ञान और स्त्री—प्रज्ञा का उदय ॥

---

मैं **संजीव**, अब बात करूँ, तारा के उस अद्भुत ज्ञान की, जिसने नींव रखी थी जग में, स्त्री के नए सम्मान की। उसकी उत्तर—गाथा में, राजनीति का एक नया पाठ है, जहाँ बल से बड़ा विवेक है, और बुद्धि का ही ठाठ है।

तारा ने दिखाया कि—नारी केवल कोमल एक कली नहीं, वह तो साम्राज्य चलाने वाली, सबसे बड़ी एक बली रही। मैं लिखता हूँ वह प्रज्ञा, जो आज की नारी का सम्बल है, जो विज्ञान और ज्ञान के, हर क्षेत्र में अब सफल है।

किष्किंधा की वह राजमाता, आज की हर लीडर में है, उसका वह सटीक परामर्श, आज के हर निडर में है। मेरी कविता इस मेधा को, **‘सृजन की शक्ति’** नाम दे, जो भटकती हुई इस दुनिया को, सही दिशा की सलाह दे।

सप्तम सर्ग की यह मेधा अब, आकाश को छू रही, तारा की वह बुद्धिमत्ता, अब नया सवेरा हो रही। मैं **संजीव**, पाया है कि, ज्ञान ही असली शक्ति है, तारा की वह प्रखर बुद्धि, नारीत्व की ही भक्ति है।



## ॥ मंदोदरी का सतीत्व और पाप के विरुद्ध विद्रोह ॥

---

मैं **संजीव**, अब चिंतन करता, मंदोदरी के उस साहस पर, जो खड़ी रही अधर्म के विरुद्ध, अपने पति के ही आवास पर।

उसकी उत्तर—गाथा कहती—सतीत्व केवल अंधभक्ति नहीं, सत्य के मार्ग पर चलना ही, है असली आत्मशक्ति यही।

आज भी जब कोई नारी, गलत का विरोध करती है, मंदोदरी की वह परम्परा, फिर से यहाँ उभरती है। मैं लिखता हूँ वह दृढ़ता, जो रावण के आगे न झुकी, जिसने लंका को बचाने हेतु, अपनी मर्यादा न रोकी।

वह साक्षात् धर्म का रूप थी, उस असुरों की नगरी में, उसने अपनी शुचिता बचाई, पाप की हर एक डगरी में। मेरी लेखनी इस विद्रोह को, '**नैतिकता का विजय**' कहे, जो अधर्मी सत्ता के विरुद्ध, एक निर्भय सी अक्षय कहे।

सप्तम सर्ग का यह सतीत्व अब, सबको राह दिखाता है, मंदोदरी का वह पावन जीवन, नया पाठ पढ़ाता है।

मैं **संजीव**, इसी श्रद्धा से, यह चरित्र यहाँ गढ़ा, मंदोदरी के उस धैर्य को, मैंने अपनी आत्मा से पढ़ा।



## ॥ पंच—प्रभा और नारी—अस्मिता का नया दौर ॥

---

मैं **संजीव**, अब जोड़ रहा हूँ, इन पाँचों को एक सूत्र में, जिन्होंने अस्मिता को परिभाषित किया, अपने ही महान पुत्र में।

ये पाँचों केवल पात्र नहीं, ये तो—नारीत्व के आयाम हैं, जिन्होंने पुरुष—प्रधान जगत को, दिए नए पैगाम हैं।

अहिल्या का धैर्य, कुंती की ममता, द्रौपदी का वह तेज, तारा की बुद्धि, मंदोदरी की शुचिताकृबनी नई एक सेज। मैं लिखता हूँ वह अस्मिता, जो आज फिर से जाग रही, जो अपनी पहचान की खातिर, हर बंधन को त्याग रही।

अब नारी केवल छाया नहीं, वह तो—स्वयं एक प्रकाश है, इन पाँचों प्रभाओं से ही तो, उसका नया आकाश है। मेरी कविता इस अस्मिता को, **‘पंच—प्रभा’** का उपहार कहे,

जो आधुनिक युग की नारी का, सबसे बड़ा आधार कहे।

सप्तम सर्ग का यह वैचारिक, संगम अब पूर्ण होता है, नारी के अपने अस्तित्व का, यह नया सवेरा होता है। मैं **संजीव**, इसी संकल्प से, इस सर्ग को सजाया, इन पाँचों की साझा शक्ति को, अपनी वाणी में गाया।



## ॥ इतिहास का पुनर्लेखन और लेखक का दायित्व ॥

---

मैं **संजीव**, अब मानता हूँ कि, इतिहास के साथ अन्याय हुआ,  
जहाँ इन पाँचों की पीड़ा का, कभी न सही पर्याय हुआ।  
मैंने अपनी इस लेखनी से, उस सच को सामने लाया है,  
जिसे सदियों तक समाज ने, अपने डर से छुपाया है।

यह महाकाव्य केवल कविता नहीं, यह तो—एक न्याय है,  
नारी—शक्ति के गौरव का, यह सबसे बड़ा अध्याय है।  
मैं लिखता हूँ वह इतिहास, जहाँ पुरुष नहीं, नारी प्रधान है,  
जहाँ उसके बलिदानों का ही, होता सबसे बड़ा गान है।

मेरी कलम अब रुकेगी नहीं, जब तक सच न गूँज उठे,  
जब तक इन पाँचों का सम्मान, हर घर में न गूँज उठे।  
यह तो मेरा उत्तरदायित्व है, कि मैं सच को लिखूँ,  
चाहे इस दुनिया की नजरों में, मैं थोड़ा सा अलग दिखूँ।

सप्तम सर्ग की यह दृष्टि अब, इतिहास को बदल रही,  
मेरी लेखनी की यह मशाल, अब हर दिल में जल रही।  
पाँचों प्रभाओं की यह उत्तर—कथा, अब साक्ष्य बन चुकी है,  
इतिहास के उन काले पन्नों को, अब ये साफ कर चुकी है।





## ॥ समय की पुकार और पंच-प्रभा का आवाहन ॥

---

मैं **संजीव**, अब आवाहन करता हूँ, इन पाँचों दिव्य  
ज्योतियों का,  
जो आज भी राह दिखा रही हैं, हम जैसी कई मोतियों को ।  
हे अहिल्या! आओ और, हमारी जड़ता को फिर से तोड़  
दो,  
हे द्रौपदी! हमारे भीतर भी, प्रतिशोध का नया मोड़ दो ।

हे कुंती! ममता सिखाओ, हे तारा! हमें बुद्धि दो,  
हे मंदोदरी! हमारे चरित्र को, सतीत्व की वह शुद्धि दो ।  
मैं लिखता हूँ वह प्रार्थना, जो आज का युग कर रहा,  
इन पाँचों के अभाव में ही, मानवता का मन अब मर रहा ।

जब-जब संकट आएगा, ये पाँचों फिर से आएँगी,  
किसी न किसी नारी के भीतर, अपना रूप दिखाएँगी ।  
मेरी लेखनी इस आवाहन को, '**महाकाव्य का प्राण**' कहे,  
जो सोई हुई मानवता को, फिर से एक इंसान कहे ।

सप्तम सर्ग का यह आध्यात्मिक, स्वर अब गूँज रहा,  
पंच-प्रभा का यह दिव्य तेज, अब नया मार्ग ढूँढ़ रहा ।  
मैं **संजीव**, अपनी आत्मा से, इन पाँचों को पुकारा है,  
इनके ही पावन चरणों में, मैंने अपना जीवन वारा है ।



## ॥ लोक-परलोक और अमरता का रहस्य ॥

---

मैं **संजीव**, अब सोच रहा हूँ, इनके अमर होने के राज को, क्यों ये आज भी प्रासंगिक हैं, इस आधुनिक समाज को? ये देह से चली गई, पर अपने-मूल्यों में जीवित हैं, ये हमारे संस्कारों में, आज भी पूरी तरह से समाहित हैं।

जो सत्य के लिए लड़ता है, वह कभी नहीं मरता है, काल का वह क्रूर चक्र भी, उसके आगे डरता है। मैं लिखता हूँ वह अमरता, जो इन पाँचों ने पाई है, इनके त्याग और बलिदान की, यह सबसे बड़ी कमाई है।

ये न त्रेता की हैं, न द्वापर की, ये तो-हर युग की जान हैं,  
ये तो-ईश्वर के बनाए हुए, सबसे सुंदर इंसान हैं।  
मेरी कविता इस अमरत्व को, '**पंच-प्रभा**' का वैभव कहे,  
जो मृत्यु के उस पार भी, अपनी ही एक विजय कहे।

सप्तम सर्ग की यह गहराई अब, अनंत में खो रही,  
इन पाँचों की पावन गाथा, अब शाश्वत ही हो रही।  
मैं **संजीव**, पाया है कि, चरित्र ही असली अमरता है,  
वही तो इंसान को, देवताओं सा बड़ा करता है।



## ॥ पाठक का हृदय और पंच—प्रभा का संदेश ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, पढ़ते हुए तुम्हारी उन आँखों को,  
जो समझ रही हैं आज, इन पाँचों की अनकही बातों को।  
क्या तुम्हें महसूस हुआ? वह पत्थर होना, वह चीरहरण?  
क्या तुमने भी किया है आज, इन पाँचों का मानसिक वरण?

यह महाकाव्य तुम्हारे भीतर, एक नया दीप जलाएगा,  
नारी के प्रति तुम्हारी सोच को, और भी ऊँचा उठाएगा।  
मैं लिखता हूँ वह बदलाव, जो इस कविता के बाद होगा,  
जब हर नारी के सम्मान में, तुम्हारा ही एक संवाद होगा।

इन पाँचों के जीवन से सीखो—कैसे संघर्ष करना है,  
और अपनी गरिमा की खातिर, कैसे हर संकट से लड़ना है।  
मेरी लेखनी इस संदेश को, **‘मानवता का उपहार’** कहे,  
जो समाज के हर अंग में, नया जीवन का एक विस्तार करे।



सप्तम सर्ग की ये रश्मियाँ, अब तुम्हारे मन में बसेंगी,  
अन्याय की हर छाया को, ये पल भर में ही डसेंगी।  
मैंने इसी आशा से, यह सातवाँ सर्ग लिखा,  
तुम्हारे हृदय की उस भूमि पर, मैंने नया सच लिखा।

## ॥ सप्तम सर्ग उपसंहार और अष्टम की ओर ॥

यहाँ पूर्ण हुई वह उत्तर—गाथा, जो समय का साक्ष्य बनी,  
पाँचों प्रभाओं की यह स्मृतियाँ, अब अमरत्व की भाष्य बनी।  
मैं **संजीव**, इस अध्याय में, इनके प्रभाव को गाया,  
इनके जाने के बाद का, वह सारा दृश्य यहाँ सजाया।

अब सप्तम सर्ग को विराम दे, मैं अष्टम की ओर बढ़ूँगा,  
जहाँ 'काल—अतिक्रमण और अमरत्व' की नई कथा  
गढ़ूँगा।

आठवाँ सर्ग बताएगा—कैसे ये समय की सीमाओं को लाँघ  
गई,  
और कैसे ये मृत्यु के उस पार, ईश्वर के ही पास जा मिलीं।

सफर अभी जारी है, अभी तीन और महा—पड़ाव बाकी हैं,  
'पंच प्रभा' की पूर्णता की, अभी सुंदर झाँकी बाकी है।  
मेरी लेखनी तैयार है, अब और भी गंभीर होने को,  
नारी—शक्ति के उन गूढ़, रहस्यों को अब और पिरोने को।

मैं **संजीव**, अपनी वाणी को, अब और प्रखर बनाऊँगा,  
महाकाव्य के अगले खंड को, अब पूरी दुनिया को  
सुनाऊँगा।

सप्तम सर्ग संपन्न हुआ, अब अष्टम सर्ग की है बारी,  
नारी—गौरव की यह गाथा, अब होगी और भी प्यारी।



## अष्टम सर्ग काल—अतिक्रमण और अमरत्व

---





## ॥ काल के पार और सत्य की विजय ॥

---

मैं **संजीव**, अब ले चलता हूँ, तुम्हें उस अनंत के पार,  
जहाँ समय का चक्र रुकता है, और थम जाता है संसार।  
अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी महान,  
भौतिक देह को त्यागकर अब, बन गई हैं अमिट विधान।

मैं लिखता हूँ वह शाश्वत ज्योति, जो कभी नहीं बुझती,  
जिसकी गहराई को मापने में, बुद्धि भी अब है उलझती।  
हजारों वर्ष बीत गए पर, इनका नाम अब भी जवान है,  
क्योंकि इनके हर संघर्ष में, सत्य का अपना एक गान है।

मेरी लेखनी उस अमरत्व को, अब शब्दों में ढालती,  
जो काल के काले पन्नों से, नया एक सूरज निकालती।  
मृत्यु केवल शरीर की होती, चरित्र तो अमर रहता है,  
यही संदेश अष्टम सर्ग का, हर एक शीर्षक कहता है।

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, इन पाँचों का वह दिव्य रूप,  
जो समय की धूल को झाड़कर, खड़ा है ज्योति बन अनूप।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, इस सर्ग का ऊँचा उद्देश्य,  
जहाँ नश्वरता समाप्त होती, और शुरू होता ईश्वरीय वेश।



## ॥ अहिल्या का शाश्वत धैर्य और पत्थर की गवाही ॥

---

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ—क्या पत्थर होना केवल अंत था? या वह तो एक नई चेतना का, सबसे बड़ा वसंत था? अहिल्या ने काल को जीत लिया, अपने उस कठिन मौन से, उसने सिखाया कि कैसे लड़ना, इस दुनिया के हर कौन से।

शिला बनी वह वर्षों तक, पर उसका संकल्प नहीं हिला, तभी तो उसे अंत में, साक्षात् राघव का चरण मिला। मैं लिखता हूँ वह धैर्य जो, पहाड़ों से भी भारी है, अहिल्या की यह अमरता, हर युग पर अब भारी है।

वह आज भी गवाही देती है—अन्याय सदा नहीं टिकता, सच्चा तपस्वी कभी किसी, प्रलोभन के आगे नहीं बिकता। मेरी कविता इस अमरत्व को, '**शांति का महाकाव्य**' कहे, जहाँ पत्थर भी अपनी वाणी में, सत्य की अविरल धार बहे।

अष्टम सर्ग की यह पहली किरण, अहिल्या को समर्पित है, जिसका पावन और अडिग चरित्र, अब काल के पार अर्पित है।

मैं **संजीव**, पाया है कि, सहना भी एक महान कला है, अहिल्या के उस धैर्य से ही, यह सारा जगत अब चला है।



## ॥ कुंती का संघर्ष और ममता का अमर दीप ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, कुंती की वह ममता अपार,  
जो काल की सीमाओं को लॉघ, करती है सबका उद्धार।  
उसने दुःख माँगे थे प्रभु से, ताकि हरि का ध्यान रहे,  
उसका यह दर्शन ही तो, उसे अमरता का वरदान दे।

महलों की वह रानी होकर भी, उसने काँटों की राह चुनी,  
अपने त्याग से ही उसने, पांडवों की यह नई तकदीर बुनी।  
मैं लिखता हूँ वह मातृत्व, जो केवल एक युग का नहीं,  
कुंती की वह पीड़ा तो, हर युग की माँ की अपनी ही।

अमरत्व उसे मिला क्योंकि, उसने कभी हार नहीं मानी,  
अकेली माँ ने गढ़ दी थी, कुरुवंश की नई कहानी।  
मेरी लेखनी इस संघर्ष को, **‘ममता का हिमालय’** कहे,  
जो समय की हर आँधी में, अपनी ही एक गरिमा में रहे।

कुंती आज भी जीवित है—हर उस माँ के अदम्य साहस  
में,  
जो अपने सुतों को पालती है, संघर्षों के कठिन प्रवास में।  
अष्टम सर्ग का यह अध्याय, कुंती के त्याग को नमन करे,  
उसका वह पावन और उज्ज्वल नाम, हर हृदय को पावन  
करे।



## ॥ द्रौपदी की अग्नि और नारी—अस्मिता का अमरत्व ॥

---

मैं **संजीव**, अब सुन रहा हूँ, द्रौपदी की वह भीषण हुंकार,  
जो आज भी गूँज रही है, बनकर अन्याय पर प्रहार।  
वह केवल पाँच पतियों की पत्नी, या यज्ञवेदी की सुता  
नहीं,  
वह तो नारी के स्वाभिमान की, साक्षात् एक विधा ही।

अमरत्व उसे मिला क्योंकि, उसने कभी झुकना नहीं सीखा,  
भरी सभा में उसने, अधर्म का वह चेहरा ही देखा।  
मैं लिखता हूँ वह ज्वाला, जो अब मशाल बन चुकी है,  
नारी की अपनी पहचान हेतु, वह ढाल बन चुकी है।

काल बीत गया पर द्रौपदी का, वह प्रश्न अब भी खड़ा है,  
मर्यादा कहाँ थी तुम्हारी? यह सवाल सबसे बड़ा है।  
मेरी कविता इस प्रखरता को, '**अमर प्रतिशोध**' का नाम  
दे,  
जो सोई हुई चेतना को, फिर से नया एक आयाम दे।

द्रौपदी कभी नहीं मरती—वह तो हर उस आवाज में है,  
जो उठती है आज भी, इस पुरुष—प्रधान समाज में है।  
अष्टम सर्ग की यह अग्नि, अब ब्रह्मांड में समाहित है,  
द्रौपदी की वह अमर शक्ति, अब जन—जन में प्रवाहित है।



## ॥ तारा का विवेक और मेधा की अमर ज्योति ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, तारा की वह मेधा विशाल, जो समय के गहरे कुहासे को, चीरती है हर एक साल। उसकी बुद्धि ही थी वह, जिसने किष्किंधा को बचा लिया, अमरत्व उसे मिला क्योंकि, उसने ज्ञान का दीप जला लिया।

नीति और कूटनीति की, वह साक्षात् एक पाठशाला थी, तारा की वह वाणी तो, अमृत की ही एक प्याला थी। मैं लिखता हूँ वह विवेक, जो आज भी दिशा दिखाता है, स्त्री की बुद्धिमत्ता का, जो नया पाठ पढ़ाता है।

वह केवल बाली की पत्नी नहीं, वह तो—कुल की रक्षक थी, अधर्म और मोह के बीच खड़ी, वह एक निष्पक्ष दर्शक थी। मेरी लेखनी इस प्रज्ञा को, **‘मेधा का शाश्वत रूप’** कहे, जो घोर अँधेरे में भी, दिखता है सूरज बन अनूप।

तारा आज भी अमर है—हर उस विदुषी और ज्ञानी में, जो अपनी बुद्धि से लिखती है, नई सफलता की कहानी में।

अष्टम सर्ग की यह ज्योति, अब तारा बन चमक रही, उसकी वह अद्भुत मन्त्रणा, अब युगों—युगों तक दमक रही।



## ॥ मंदोदरी की शुचिता और सतीत्व का अमर गान ॥

---

मैं **संजीव**, अब ले चलता हूँ, तुम्हें मंदोदरी के उस धाम,  
जहाँ पाप की नगरी में भी, गूँजता रहा बस राम का नाम।  
अमरत्व उसे मिला क्योंकि, वह अपनी शुचिता पर अडिग  
रही,  
अधर्म के उस गढ़ में भी, वह सत्य की ही एक सीढ़ी रही।

उसने रावण को चुनौती दी, और विभीषण को संबल दिया,  
अपने सतीत्व के बल पर ही, उसने सारा जग निर्मल  
किया।

मैं लिखता हूँ वह पवित्रता, जो शरीर से नहीं, मन से है,  
मंदोदरी की वह अमरता, उसके उज्ज्वल चिंतन से है।

वह आज भी गवाही देती है—कि संगति तुम्हें नहीं बदलती,  
अगर भीतर की ज्योति तुम्हारी, निरंतर ही है जलती।  
मेरी कविता इस गरिमा को, '**सतीत्व का महासागर**' कहे,  
जो अधर्म के रेगिस्तान में, पुण्य की एक गागर रहे।

मंदोदरी कभी नहीं मिटती—वह तो हर उस शुचिता में है,  
जो विकारों के बीच रहकर भी, अपनी ही एक निर्मलता  
में है।

अष्टम सर्ग का यह समर्पण, अब मंदोदरी को अर्पण है,  
उसका वह पावन चरित्र ही, नारीत्व का असली दर्पण है।

## ॥ पाँचों का संयुक्त अमरत्व – पंचकन्या का रहस्य ॥

---

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ—क्यों ये पाँचों ही अमर हुईं?  
क्यों इनके नाम से ही, सारी बाधाएँ अब दूर हुईं?  
अहिल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा, मंदोदरी—ये पाँचों नाम,  
बन गए हैं इस जगत के, सबसे पावन और ऊँचे धाम।

अमरत्व का यह रहस्य, इनके 'संघर्ष और शक्ति' में है,  
इनकी अटूट श्रद्धा और, ईश्वर के प्रति भक्ति में है।  
मैं लिखता हूँ वह जोड़, जो इन्हें एक बनाता है,  
नारीत्व के उस संपूर्ण, गौरव का दर्शन कराता है।

इनमें से कोई भी, समाज के साँचे में नहीं ढली,  
ये अपनी ही बनाई हुई, एक नई राह पर चलीं।  
मेरी लेखनी इस एकता को, '**पंच—प्रभा का संगम**' कहे,  
जो काल की हर चुनौती का, सबसे बड़ा और उत्तम कहे।

ये पाँचों अब एक हैं—नारीत्व की एक ही आवाज हैं,  
ये तो इस सृष्टि के, सबसे सुंदर और पावन साज हैं।  
अष्टम सर्ग का यह रहस्य, अब सबको जगा रहा,  
अमरता का यह नया अर्थ, अब सबको समझा रहा।

## ॥ नश्वर देह और अनश्वर चरित्र का द्वंद्व ॥

मैं **संजीव**, अब चिंतन करता—क्या है असली अमरता?  
क्या वह जो सदियों तक, महलों में है वास करता? नहीं,  
देह तो माटी है, जो माटी में ही मिल जाती है,  
पर चरित्र की वह खुशबू, युगों—युगों तक आती है।

पाँचों नारियों ने अपनी, नश्वरता को जीत लिया,  
अपने त्याग और तप से, अमृत का ही पान किया।  
मैं लिखता हूँ वह युद्ध, जो देह और आत्मा का है,  
इन पाँचों की विजय तो, अंश उस परमात्मा का है।

अमरत्व उसे मिलता है, जो स्वयं के लिए नहीं जीता,  
जो परोपकार की राह पर, अपना सारा जीवन पीता।  
मेरी कविता इस दर्शन को, '**चरित्र का विजय—गान**'  
कहे,  
जो मृत्यु के उस पार भी, रखता अपना एक मान दिखे।

अष्टम सर्ग की यह गहराई, अब आत्मा को झकझोरती,  
नश्वरता के उन बंधनों को, अब एक—एक कर तोड़ती।  
मैं **संजीव**, पाया है कि, कर्म ही असली पहचान है,  
चरित्र ही है वह जो, बनाता इंसान को महान है।



## ॥ काल का साक्षी और इतिहास का न्याय ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ, काल के उस निष्पक्ष दरबार में,  
जहाँ न्याय हो रहा है आज, इन पाँचों के इस संसार में।  
इतिहास ने इन्हें दबाया, पर काल ने इन्हें संजोया है,  
इनके हर एक आँसू में, ईश्वर ने अपना बीज बोया है।

अमरत्व वह न्याय है, जो नियति इन्हें प्रदान करती,  
इनके महान बलिदानों की, जो अब पूरी पहचान करती।  
मैं लिखता हूँ वह गवाही, जो समय स्वयं दे रहा है,  
इन पाँचों के पावन नाम, अब अंबर स्वयं ले रहा है।

अन्याय के उन पन्नों को, अब काल ने ही फाड़ दिया,  
सत्य की इस प्रतिमा को, अब शिखर पर गाड़ दिया।  
मेरी लेखनी इस न्याय को, **‘अंतिम सत्य की जीत’** कहे,  
जो सदियों के अपमान के बाद, आई एक नई रीत कहे।

अष्टम सर्ग का यह दरबार, अब गरिमा से भरा हुआ,  
इन पाँचों का वह पावन रूप, अब अमरता में जड़ा हुआ।  
मैं **संजीव**, इसी भाव से, यह अष्टम सर्ग बुना,  
काल के उस मौन सत्य को, अपनी लेखनी से चुना।

## ॥ आधुनिक युग में अमरता की प्रासंगिकता ॥

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ—क्या ये आज भी हमारे साथ हैं?  
क्या इनकी ये पाँचों प्रभाएँ, आज भी हमारे हाथ हैं?

हाँ, अमरत्व वही है जो, हर युग में प्रासंगिक हो,  
जो हर डूबती हुई कश्ती के लिए, एक नया नाविक हो।

आज की नारी जब लड़ती है, तो द्रौपदी उसमें जागती है,

जब वह धीरज रखती है, तो अहिल्या उसमें झाँकती है।  
मैं लिखता हूँ वह अमरता, जो हमारे ही जीवन में है,  
इन पाँचों की वह शक्ति तो, हमारे ही अंतर्मन में है।

ये मरकर भी नहीं मरीं, क्योंकि ये हमारे संस्कार हैं,  
ये हमारे भारत की, सबसे सुंदर और ऊँची दीवार हैं।  
मेरी कविता इस प्रासंगिकता को, '**युगों का प्रकाश**' कहे,  
जो आज की हर समस्या का, करता समूल ही विनाश  
कहे।

अष्टम सर्ग की यह रश्मि, अब वर्तमान को रोशन करे,  
इन पाँचों के अमर मूल्यों का, हर हृदय अब पोषण करे।  
मैं **संजीव**, इसी दृष्टि से, यह नया अध्याय गढ़ा,  
इन पाँचों की अमरता को, मैंने अपने आज में पढ़ा।



## ॥ पाँचों कन्याओं का आपसी दिव्य संवाद ॥

---

मैं **संजीव**, अब सुन रहा हूँ, उनकी वह अलौकिक वाणी,  
जो कह रही हैं—हम नहीं हैं, केवल कोई पुरानी कहानी।  
हम तो वह चेतना हैं, जो कभी सोती नहीं,  
हम वह शक्ति हैं, जो दुख में भी रोती नहीं।

अहिल्या ने कहा—मेरा पत्थर होना, एक जागृति थी,  
द्रौपदी बोली—मेरी ज्वाला, न्याय की एक आकृति थी।  
मैं लिखता हूँ वह संवाद, जो अमरता के शिखर पर है,  
इन पाँचों का यह दिव्य मिलन, अब इस ब्रह्मांड के घर  
पर है।

हमने सहा ताकि तुम सीखो, हमने त्यागा ताकि तुम पाओ,  
अमरता की इस राह पर, तुम भी अब कदम बढ़ाओ।  
मेरी लेखनी इस उपदेश को, '**पंच—प्रभा का अमृत**' कहे,  
जो मानव की सोई हुई, आत्मा को अब जागृत करे।

अष्टम सर्ग का यह संवाद, अब प्रकाश फैला रहा,  
अमरत्व के असली अर्थ को, सबको अब समझा रहा।  
मैं **संजीव**, इसी दिव्यता को, अपने शब्दों में उतारा,  
इन पाँचों की अमर शक्ति का, मैंने लिया है सहारा।





## ॥ पुरुष—सत्ता के विरुद्ध अमर विद्रोह ॥

---

मैं **संजीव**, अब देखता हूँ, कैसे इनका अमरत्व एक ढाल है,

जो पुरुष के अहंकार के विरुद्ध, एक अनवरत काल है।  
अमरत्व उन्हें नहीं मिला, जिन्होंने इन्हें दबाया था,  
अमरत्व तो उन्हें मिला, जिन्होंने अपना मान बचाया था।

रावण, बाली और दुर्योधन, अब इतिहास की धूल हुए,  
पर मंदोदरी, तारा और द्रौपदी, अब महकते हुए फूल हुए।  
मैं लिखता हूँ वह विद्रोह, जो शाश्वत और अखंड है,  
नारी—शक्ति का यह अमर रूप, सचमुच बड़ा प्रचंड है।

अमरता का यह न्याय बताता—अहंकार सदा हारता है,  
और नारी का वह आत्मबल ही, काल के पार उभरता है।  
मेरी लेखनी इस विजय को, '**सतीत्व का स्वर्ण—युग**'  
कहे,  
जो हर युग के अन्यायी को, देता एक कड़ी शिकस्त रहे।

अष्टम सर्ग की यह गर्जना, अब सत्ता को कँपा रही,  
इन पाँचों की अमर गाथा, नया इतिहास अब बता रही।  
मैं **संजीव**, इसी तेज से, यह विद्रोह यहाँ लिखा,  
अमरता के उस असली रूप को, मैंने इनके साथ सीखा।



## ॥ अध्यात्म और अमरत्व का गहरा संबंध ॥

---

मैं **संजीव**, अब ले चलता हूँ, तुम्हें भक्ति के उस मार्ग पर,  
जहाँ इन पाँचों ने पाया अमरत्व, ईश्वर के ही द्वार पर।  
अहिल्या की भक्ति, कुंती का जप, और द्रौपदी का वह  
आवाहन,  
इनके आध्यात्मिक बल ने ही तो, किया था काल का  
शमन।

अमरत्व केवल कर्म से नहीं, वह तो आत्मा की शुद्धि से है,  
उस परम सत्ता के प्रति, अटूट और पावन बुद्धि से है।  
मैं लिखता हूँ वह योग, जो इन पाँचों ने सिद्ध किया,  
अपने तप और बलिदान से, इन्होंने सारा जग समृद्ध  
किया।

मंदोदरी का सतीत्व और, तारा का वह आत्म-ज्ञान,  
ये ही तो थे वे सूत्र, जिनसे मिला इन्हें अमर सम्मान।  
मेरी कविता इस अध्यात्म को, '**अमरता की सीढ़ी**' कहे,  
जो हर एक मुमुक्षु जीव को, सत्य की राह की पीढ़ी कहे।

अष्टम सर्ग का यह दिव्य पक्ष, अब सबको शांत करता है,  
इन पाँचों के आध्यात्मिक तेज से, सबका हृदय अब भरता  
है।

मैं **संजीव**, इसी शुचिता से, यह सर्ग यहाँ सजाया,  
इन पाँचों की अमर भक्ति को, अपनी वाणी में गाया।



## ॥ काल—अतिक्रमण का वैज्ञानिक और दार्शनिक आधार ॥

---

मैं **संजीव**, अब सोच रहा हूँ—क्या समय को भी जीता जा सकता?

क्या अमरता का यह प्याला, सचमुच है अब पिया जा सकता?

हाँ, जब विचार अमर होते हैं, तो व्यक्ति भी अमर होता है, पाँचों नारियों का वह दर्शन ही, अब काल का शिखर होता है।

ऊर्जा कभी मरती नहीं, बस अपना रूप बदलती है, इन पाँचों की वह शक्ति भी, अब हर हृदय में जलती है। मैं लिखता हूँ वह विज्ञान, जो चेतना के विस्तार का है, अमरत्व तो केवल एक परिणाम, इनके महान आचार का है।

इन्होंने समय की लकीरों को, अपने संघर्ष से मिटा दिया, और आने वाले युगों को, एक नया प्रकाश दिखा दिया। मेरी लेखनी इस दर्शन को, **‘चेतना का महामिलन’** नाम दिया, जिसने काल की हर सीमा को, जड़ से विसर्जित कर दिया।



अष्टम सर्ग की यह व्यापकता, अब विज्ञान को भी छूती  
है,  
इन पाँचों की अमर ऊर्जा से ही, यह सृष्टि अब गूँथी है।  
मैं **संजीव**, इसी ज्ञान से, यह रहस्य यहाँ खोला हूँ,  
काल—अतिक्रमण के इस सत्य को, अपनी वाणी में बोला  
हूँ।



## ॥ लोक—स्मृति में अमरता और जन—मानस का आदर ॥

---

मैं संजीव, अब देखता हूँ, गाँवों की उन चौपालों में,  
जहाँ इन पाँचों के गीत गूँजते, लोक—कथाओं के ढालों  
में।

इतिहास चाहे भूल जाए, पर लोक—स्मृति कभी नहीं  
भूलती,  
इनकी पावन गाथा तो, हर माँ की लोरी में है झूलती।

अमरत्व वह है जो, साधारण जन के हृदय में बसता है,  
जो हर त्योहार और उत्सव में, नई उमंग बन हँसता है।  
मैं लिखता हूँ वह आदर, जो सदियों से इन्हें मिला,  
इनके नाम के सुमिरन से ही, भक्ति का यह फूल खिला।

अहिल्या की पत्थर वाली बात, हर बच्चा—बच्चा जानता है,  
द्रौपदी के उस चीरहरण को, हर कोई अपना मानता है।  
मेरी कविता इस लोक—प्रियता को, '**असली अमरता**' कहे,  
जो कागजों से ऊपर उठकर, लोगों की साँसों में जिन्दा रहे।

अष्टम सर्ग की यह रश्मि, अब लोक—संस्कृति को रोशन  
करे,  
इन पाँचों के अमर मूल्यों का, हर जन अब पोषण करे।  
मैं **संजीव**, इसी जुड़ाव को, अपने शब्दों में पिरोया है,  
इन पाँचों की अमर गाथा में, मैंने अपना हृदय डुबोया है।



## ॥ अमरता का मूल्य – त्याग और बलिदान ॥

---

मैं **संजीव**, अब पूछता हूँ—क्या अमरता सहज ही मिल जाती?

क्या बिना तपे हुए कभी, यह कली शिखर पर खिल पाती?  
नहीं, पाँचों नारियों ने त्याग और बलिदान की, भारी कीमत चुकाई थी,  
अपने आंसुओं और लहू से, इन्होंने यह पहचान बनाई थी।

कुंती का वनवास, द्रौपदी का अपमान, अहिल्या का वह शाप,

ये ही तो थे वे मूल्य, जिनसे मिटे इनके सारे पाप।  
मैं लिखता हूँ वह बलिदान, जो अमरता की शर्त है,  
बिना कष्ट के जीवन का, कहाँ मिलता कोई अर्थ है।

इन्होंने खुद को मिटाया, ताकि धर्म की रक्षा हो सके,  
इन्होंने अपमान सहा, ताकि नारीत्व की शिक्षा हो सके।  
मेरी लेखनी इस मूल्य को, '**त्याग का महा—पुरस्कार**'  
कहे,  
जो हर तपस्वी जीव के लिए, सबसे बड़ा आधार दिखे।

अष्टम सर्ग का यह पक्ष, अब सबको गंभीर करता है,  
अमरता की उस कठिन राह का, दर्शन अब कराता है।  
मैं **संजीव**, इसी सत्य को, यहाँ पूरी दृढ़ता से लिखा,  
अमरता के उस ऊँचे मूल्य को, मैंने इनके साथ सीखा।

## ॥ लेखक का आत्म-समर्पण और अमरता की अनुभूति ॥

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, इस सर्ग के उस अंतिम छोर,  
जहाँ मेरा अपना अहंकार भी, झुक गया है इनकी ओर।  
मैं लिखता-लिखता स्वयं ही, इनके अमरत्व में खो गया  
हूँ  
इन पाँचों की उस दिव्य छाया में, मैं भी अब सो गया हूँ।

मेरी लेखनी धन्य हुई, जो इनके नाम को छू सकी,  
मेरी आत्मा तृप्त हुई, जो इनके सत्य को पा सकी।  
मैं लिखता हूँ वह जुड़ाव, जो लेखक और पात्र का है,  
यह महाकाव्य तो बस एक बहाना, इनके ही शास्त्र का है।

अमरत्व की वह अनुभूति, अब मेरे रोम-रोम में है,  
इन पाँचों की वह पावन ज्योति, अब मेरे हर व्योम में है।  
मेरी कविता इस समर्पण को, '**सृजन का अंतिम लक्ष्य**'  
कहे,  
जो शब्द और भाव के पार भी, अपनी ही एक साक्ष्य कहे।

अष्टम सर्ग का यह आत्म-संवाद, अब मुझे भी बदल रहा,  
इन पाँचों के अमर तेज से, मेरा भी मन अब ढल रहा।  
मैं **संजीव**, इसी श्रद्धा से, अपनी कलम को यहाँ रोका,  
अमरता के उस महा-सागर में, मैंने लिया एक गोता।

## ॥ पंच-प्रभा का वैश्विक संदेश ॥

मैं **संजीव**, अब आह्वान करता हूँ, पूरी दुनिया के लोगों का,  
देखो! ये पाँचों प्रभाएँ हैं, इलाज हमारे सब रोगों का।  
अमरत्व वह नहीं जो, देशों को जीतकर मिलता है,  
अमरत्व तो वह है जो, करुणा के उपवन में खिलता है।

इन पाँचों ने दिखाया कि, कैसे शांति और धैर्य से लड़ना है,  
कैसे घृणा के उस मरुस्थल में, प्रेम का बीज बोना है।  
मैं लिखता हूँ वह वैश्विक संदेश, जो इन पाँचों से आता है,  
जो पूरी मानवता को, एक सूत्र में अब पिरोता है।

अहिल्या का क्षमा-भाव, और कुंती की वह दया,  
द्रौपदी का न्याय-बोध, और तारा की वह नई माया।  
मेरी लेखनी इस संदेश को, '**अमर विश्व-शांति**' कहे,  
जो युद्धों के इस दौर में, प्रेम की अविरल धार बहे।

अष्टम सर्ग की यह व्यापकता, अब देशों की सीमा लाँघती,  
इन पाँचों के अमर मूल्यों से, नई दुनिया है अब जागती।  
मैं **संजीव**, इसी विजन से, यह नया अध्याय बुना,  
इन पाँचों की अमर शक्ति को, विश्व-मंच के लिए चुना।





## ॥ आने वाले युगों हेतु अमर प्रेरणा ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, भविष्य की उन पीढ़ियों को, जो चढ़ेंगी एक दिन, प्रगति की उन ऊँची सीढ़ियों को। उन्हें भी इन पाँचों प्रभाओं की, हर मोड़ पर जरूरत होगी, बिना इनके मार्गदर्शन के, उनकी जिंदगी अधूरी होगी।

अमरत्व वही है जो, भविष्य के लिए एक मशाल बने, जो हर गिरते हुए इंसान के लिए, एक मजबूत ढाल बने। मैं लिखता हूँ वह प्रेरणा, जो कभी पुरानी नहीं होगी, इन पाँचों की यह गाथा, कभी किसी कहानी में नहीं खोएगी।

हजारों साल बाद भी, जब कोई नारी संकट में होगी, वह द्रौपदी को याद करेगी, और अपने आंसुओं को धोएगी। मेरी कविता इस भविष्य को, '**अमर आशा का दीप**' कहे, जो काल के उस महा-सागर में, रहेगा सबके समीप प्रिये।

अष्टम सर्ग की यह किरण, अब आने वाले कल को रोशन करे,  
इन पाँचों के अमर मूल्यों का, हर युग अब पोषण करे। मैं **संजीव**, इसी संकल्प से, यह सर्ग यहाँ संपन्न किया, भविष्य की उन पीढ़ियों को, मैंने यह सत्य अर्पण किया।



## ॥ अष्टम सर्ग उपसंहार और नवम की ओर ॥

---

यहाँ पूर्ण हुआ वह सर्ग, जो अमरत्व की व्याख्या बना,  
पाँचों प्रभाओं की यह गाथा, अब काल की नई साक्ष्य बनी ।  
मैं **संजीव**, इस अध्याय में, इनके शाश्वत रूप को गाया,  
नश्वर देह से ऊपर उठकर, इनका दिव्य तेज यहाँ  
सजाया ।

अब अष्टम सर्ग को विराम दे, मैं नवम की ओर बढ़ूँगा,  
जहाँ **‘आधुनिक युग और पंच-प्रभा’** की नई कथा  
गढ़ूँगा ।

नवाँ सर्ग बताएगा—कैसे ये आज के समाज में जीवित हैं,  
और कैसे ये आधुनिक नारी के, संघर्षों में भी समाहित हैं ।

महाकाव्य अब अपने शिखर पर है, बस दो और पड़ाव  
बाकी हैं,

**‘पंच प्रभा’** की पूर्णता की, अब सबसे सुंदर झाँकी बाकी है ।  
मेरी लेखनी तैयार है, अब वर्तमान से संवाद करने को,  
इन पाँचों की अमर शक्ति को, आज के संदर्भ में उतारने को ।

मैं **संजीव**, अपनी वाणी को, अब और प्रखर बनाऊँगा,  
महाकाव्य के इस अगले खंड को, अब पूरी दुनिया को  
सुनाऊँगा ।

अष्टम सर्ग संपन्न हुआ, अब नवम की है बारी,  
नारी—गौरव की यह गाथा, अब होगी और भी भारी ।



## नवम सर्ग आधुनिक युग और पंच—प्रभा

---



## ॥ कलयुग का आंगन और पंच-प्रभा का आगमन ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ आज के, इस भागते हुए आधुनिक  
शहर में,  
जहाँ कंक्रीट के जंगल उगे हैं, और विष भरा है हर एक  
नहर में।

पर इस चकाचौंध के पीछे भी, वही पुराना संघर्ष जारी है,  
नारी आज भी अपनी गरिमा हेतु, लड़ रही जंग भारी है।

मैं लिखता हूँ वह आह्वान, जो इन पाँचों प्रभाओं का आज किया,  
इस आधुनिकता के अँधेरे में, मैंने सत्य का दीप जला दिया।  
आओ अहिल्या! आओ द्रौपदी! मैंने आज फिर से पुकारा है,  
इस कलयुग की उलझनों में, बस तुम्हारा ही तो सहारा है।

मेरी लेखनी आज के यथार्थ को, प्राचीन मूल्यों से जोड़ती,  
समय की उन जड़ धाराओं को, प्रगति की ओर है मोड़ती।  
पाँचों नारियाँ अब विचार बनकर, हमारे बीच खड़ी हैं,  
आज की समस्याओं से लड़ने को, वे फिर से कमर कसी  
पड़ी हैं।

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ अब, इतिहास और वर्तमान का मिलन,  
जहाँ पंच-प्रभा की रश्मियाँ, कर रही हैं हर बाधा का दमन।  
पहला शीर्षक यहाँ बताता, इस सर्ग की नई और ऊँची उड़ान,  
जहाँ आज की नारी पाएगी, फिर से अपना खोया हुआ सम्मान।

## ॥ आज की अहिल्या और मानसिक जड़ता का शाप ॥

---

मैं **संजीव**, देख रहा हूँ आज भी, कई अहिल्याएँ इस समाज में,  
जो पत्थर सी जमी हुई हैं, अपने ही घर और राज में।  
शाप आज मुनि का नहीं, बल्कि रूढ़ियों और दकियानूसी का है,  
जो नारी को आगे बढ़ने न दे, उस मानसिक कंजूसी का है।

ऑफिस की कुर्सी पर बैठी, या चूल्हे-चौके में जो कैद है,  
अपने अरमानों का गला घोटना ही, क्या उसका वैध है?  
मैं लिखता हूँ वह जड़ता, जिसे तोड़ना आज बहुत जरूरी है,  
बिना अपनी पहचान के, नारी की जिंदगी बिल्कुल अधूरी है।

ओ आज की अहिल्या! तू अब, किसी राम का इंतजार न कर,  
अपने भीतर की शक्ति को जगा, और खुद का ही तू उद्धार कर।  
मेरी कविता इस जागृति को, **‘आधुनिक मुक्ति’** का नाम दे,  
जो पत्थर बनी हर स्त्री को, फिर से एक नया आयाम दे।

अहिल्या का वह चरित्र आज, हर दबी आवाज को स्वर देता,  
जड़ता के उस सन्नाटे को, अब चेतना के रंगों से भर देता।  
नवम सर्ग की यह किरण, अब हर बंद द्वार को खटखटा रही,  
आज की नारी को अपनी, असली शक्ति अब बता रही।



## ॥ आधुनिक कुंती और कैरियर— परिवार का द्वंद्व ॥

---

मैं **संजीव**, अब बात करूँ, आज की उन संघर्षरत माताओं की,  
जो कुंती सी उलझी हैं, अपने ही जीवन की उन गाथाओं में।  
एक तरफ कैरियर की ऊँचाई, एक तरफ बच्चों का वह प्यारा  
मुख,  
दोनों के बीच पिसती नारी, सह रही है आज एक नया दुःख।

कुंती ने लोक—लाज में त्यागा, आज की नारी समयाभाव  
में त्यागती,  
अपराध—बोध की अग्नि में, वह रात—रात भर है जागती।  
मैं लिखता हूँ वह द्वंद्व, जो हर कामकाजी माँ का हिस्सा है,  
कुंती का वह प्राचीन दर्द, अब घर—घर का ही एक किस्सा है।

ममता और कर्तव्य के बीच, संतुलन कैसे बनाया जाए?  
यह यक्ष—प्रश्न आज भी, हर नारी को बहुत सताए।  
मेरी लेखनी इस पीड़ा को, ममता का आधुनिक संघर्ष कहे,  
जो समाज के उन दोगले, पैमानों का अब हक सहर्ष सहे।

कुंती की वह सहनशीलता, आज की माँ का सबसे बड़ा  
बल है,  
जो अपनी मेहनत से गढ़ रही, अपनी संतान का सुंदर कल है।  
नवम सर्ग का यह अध्याय, कुंती के धैर्य को आज सलाम करे,  
आज की हर 'सुपर—वुमन' का, यह जग हृदय से सम्मान करे।



## ॥ डिजिटल युग की द्रौपदी और साइबर अपमान ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, कुरु सभा का वह बदला हुआ रूप,  
जहाँ सोशल मीडिया के मंचों पर, खिंचता है चीर अनूप।  
अपमान अब केवल शारीरिक नहीं, डिजिटल और भाषाई है,  
कीबोर्ड के पीछे छिपे दुःशासनों ने, नई एक आफत मचाई है।

ट्रॉलिंग, भद्दे कमेंट्स और, फोटो से जो छेड़छाड़ होती है,  
द्रौपदी की वह चीख आज भी, इंटरनेट के तारों में रोती है।  
मैं लिखता हूँ वह न्याय, जो अब साइबर कानूनों में चाहिए,  
नारी की अस्मिता की रक्षा हेतु, अब नया एक जुनून चाहिए।

ओ आज की द्रौपदी! तू अपनी, मर्यादा की खुद रक्षक बन,  
इन डिजिटल भेड़ियों के विरुद्ध, तू साक्षात् एक भक्षक बन।  
मेरी कविता इस हुंकार को, **‘अस्मिता’ की नई जंग** कहे,  
जो ऑनलाइन दुनिया के, हर अधर्म को अब अंग भंग करे।

द्रौपदी की वह ज्वाला अब, फायरवॉल बनकर खड़ी होगी,  
अन्याय करने वालों के विरुद्ध, उसकी लड़ाई अब बड़ी होगी।  
नवम सर्ग की यह आग अब, स्क्रीन के उस पार तक जाएगी,  
नारी के डिजिटल सम्मान को, फिर से वापस ले आएगी।



## ॥ कॉर्पोरेट की तारा और स्त्री— नेतृत्व की मेधा ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, बोर्ड—रूम की उन ऊँची सभाओं को,  
जहाँ तारा की बुद्धि चमकती, आधुनिक युग की इन हवाओं में।  
वह किष्किंधा की पटरानी थी, आज वह **‘सीईओ’** और **लीडर** है,  
अपनी मेधा और विवेक से, वह हर संकट में अब निडर है।

तारा की वह कूटनीति अब, बिजनेस और मैनेजमेंट में दिखती,  
पुरुषों के इस गढ़ में वह, सफलता की नई इबारत लिखती।  
मैं लिखता हूँ वह प्रज्ञा, जो रूप—रंग की मोहताज नहीं,  
नारी की विद्वता की गूँज, अब रुकती कहीं नहीं।

बिना नारी की सलाह के, कोई भी संगठन अधूरा है,  
तारा ने जो सच कहा था, वह आज भी बिल्कुल पूरा है।  
मेरी लेखनी इस प्रगतिक को, **‘नेतृत्व का नया सवेरा’** कहे,  
जो सदियों के पक्षपात को, और हटा रही है अब हर घेरा को।

तारा आज की उन हर महिलाओं में, जो नीति बनाती हैं,  
जो अपनी प्रखर बुद्धि से, मुश्किल राहों को सुगम बनाती हैं।  
नवम सर्ग का यह वैभव, अब ज्ञान के शिखर को छू रहा,  
तारा का वह प्राचीन विवेक, अब आधुनिकता में भी हो रहा।





## ॥ घर के भीतर की मंदोदरी और घरेलू हिंसा के विरुद्ध विद्रोह ॥

---

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, उन बंद मकानों के भीतर यहाँ, जहाँ आज भी मंदोदरी सी सती, सहती है पति का अत्याचार वहाँ।

पढ़ा—लिखा समाज है पर, रावण का वह मद आज भी जीवित है,  
घरेलू हिंसा की बेड़ियों में, नारी का जीवन अब भी व्यथित है।

मंदोदरी ने रावण को टोका, आज की नारी को भी बोलना होगा, अधर्म के उन बंद किवाड़ों को, साहस से अब खोलना होगा। मैं लिखता हूँ वह सतीत्व, जो कायरता का नाम नहीं है, चुपचाप सहते रहना अब, नारी का कोई काम नहीं है।

अगर पति अधर्मी है, तो उसका विरोध ही धर्म है, मंदोदरी की यह सीख ही तो, नारीत्व का असली मर्म है। मेरी कविता इस विद्रोह को, **‘घर की आजादी’** का मंत्र कहे, जो हर पीड़ित मंदोदरी को, नया एक स्वतंत्र तंत्र दे।

मंदोदरी का वह त्याग आज, अधिकारों की लड़ाई बन चुका, उसके धीरज का वह बाँध, अब अन्याय की खाई बन चुका।

नवम सर्ग की यह गूँज अब, हर रसोई से उठनी चाहिए, अत्याचार की हर लाठी अब, जड़ से ही टूटनी चाहिए।



## ॥ शिक्षा की ज्योति और पाँचों प्रभाओं का मिशन ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, शिक्षा के उन पावन मंदिरों को,  
जहाँ ये पाँचों प्रभाएँ मिलकर, गढ़ रही हैं नए सवेरों को।  
अहिल्या अब ज्ञान से पत्थर, की उस जड़ता को काट रही,  
कुंती शिक्षा की वह अविरल, धार अब बच्चों में बाँट रही।

द्रौपदी अब कलम को अपनी, सबसे बड़ी तलवार मानती,  
तारा विज्ञान और तकनीक की, हर बारीकी को है जानती।  
मैं लिखता हूँ वह साक्षरता, जो नारी का असली गहना है,  
अब किसी के आगे झुककर, उसे विवश होकर नहीं रहना है।

शिक्षित नारी ही तो, समृद्ध राष्ट्र का आधार है,  
मंदोदरी की शुचिता और शिक्षा, अब सफलता का द्वार है।  
मेरी लेखनी इस ज्ञान—यज्ञ को, **‘पंच—प्रभा का संकल्प’**  
कहे,  
जो कलयुग के अँधियारे में, सबसे श्रेष्ठ विकल्प बने।

शिक्षा की इस ज्योति से ही, अब भाग्य की रेखा बदलेगी,  
आज की हर बेटी अब, अपनी शर्तों पर ही आगे बढ़ेगी।  
नवम सर्ग का यह प्रकाश, अब हर मस्तिष्क को छू रहा,  
नारी—शक्ति का यह जागरण, अब पूर्णतः ही हो रहा।



## ॥ राजनीति का मंच और पंच—प्रभा का नेतृत्व ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, सत्ता के उन ऊँचे गलियारों को,  
जहाँ ये पाँचों रश्मियाँ, दे रही हैं मात हथियारों को।  
द्रौपदी अब संसद में गूँजती, न्याय की वह बुलंद आवाज  
बनकर,  
कुंती समाज—कल्याण की राह पर, चलती है अपना नया  
साज बनकर।

तारा की कूटनीति अब, देशों के बीच शांति का मार्ग बुनती,  
मंदोदरी भ्रष्टाचार के विरुद्ध, अब अपनी प्रखर वाणी है  
चुनती।  
मैं लिखता हूँ वह राजनीति, जिसमें करुणा और नीति का  
मेल हो,  
नारी के हाथों में सत्ता, अब कोई पुरुष सत्ता का खेल न  
हो।

जब नारी शासन करती है, तो प्रजा का मंगल होता है,  
अहिल्या का वह न्याय—प्रिय, शासन ही तो सबसे बढ़िया  
होता है।  
मेरी कविता इस भागीदारी को, '**लोकतंत्र का असली  
अर्थ**' कहे,  
जो आधी आबादी की शक्ति को, पहचाने और सबसे समर्थ  
कहे।



पंच-प्रभा की ये रश्मियाँ अब, चुनाव की दिशा बदल रही हैं,  
नारी की अपनी नीतियाँ, अब नए भारत को गढ़ रही हैं।  
नवम सर्ग का यह अधिकार, अब गौरव के शिखर पर खड़ा,  
राजनीति में नारी का कद, अब हिमालय से भी है बड़ा।



## ॥ विज्ञान, अंतरिक्ष और पंच-प्रभा की उड़ान ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, मंगल और चाँद की उन राहों को,  
जहाँ ये पाँचों प्रभाएँ ले चलीं, भारत की उन बाहों को।  
तारा की नक्षत्र-गणना अब, **‘इसरो’** के उपग्रहों में दिखती,  
द्रौपदी की वह अदम्य जिजीविषा, अंतरिक्ष में नई गाथा  
लिखती।

अहिल्या अब प्रयोगशाला में, नए तत्वों की खोज करती,  
कुंती परमाणु शक्ति को, लोक-कल्याण की ओर है  
मोड़ती।

मैं लिखता हूँ वह उड़ान, जो जमीन से अब अंबर तक है,  
नारी की अपनी प्रज्ञा का, यह प्रभाव अब निरंतर तक है।

अब सीमाएँ हमें नहीं बाँधतीं, हम तो अनंत की राही हैं,  
मंदोदरी की वह अडिग शुचिता, अब विज्ञान की भी गवाही है।  
मेरी लेखनी इस मेधा को, **‘नक्षत्रों का नारीत्व’** नाम दे,  
जो पुरुष-वर्चस्व वाले विज्ञान को, नया एक आयाम दे।

आज की कल्पना चावला और सुनीता में, ये पाँचों ही  
जीवित हैं,  
इनके प्राचीन संघर्षों के फल, अब सितारों में भी समाहित हैं।  
नवम सर्ग की यह ऊँचाई, अब ब्रह्मांड को नाप रही,  
नारी-शक्ति की यह गूँज, अब हर ग्रह पर है काँप रही।



## ॥ आधुनिक मनोरंजन और नारी की छवि का संकट ॥

---

मैं **संजीव**, अब बात करूँ, उस चमक—दमक वाले पर्दे की, जहाँ अक्सर नारी को दिखाया गया, केवल वस्तु मानकर बेपर्दे की।

क्या द्रौपदी की वह गरिमा, आज के विज्ञापनों में खो गई? क्या मंदोदरी की वह शुचिता, केवल एक पुरानी बात हो गई?

ग्लैमर की इस अंधी दौड़ में, नारी के अस्तित्व का ह्रास है, इन पाँचों प्रभाओं का अपमान, आज के मनोरंजन का ग्रास है। मैं लिखता हूँ वह प्रतिरोध, जो इस भ्रष्टापन के विरुद्ध चाहिए, नारी की एक सम्मानित छवि, अब हमें इस पर्दे पर चाहिए।

हम केवल रूप नहीं, हम तो—गुणों का एक महासागर हैं, अहिल्या की वह सादगी ही तो, असली सुंदरता की गागर है। मेरी कविता इस जागृति को, **‘संस्कृति की वापसी’** कहे, जो आज की हर अभिनेत्री को, गरिमा की नई एक साखी कहे।

पंच—प्रभा का वह तेज अब, इस पर्दे को भी साफ करेगा, नारी का जो अपमान करे, उसे कभी न यह समाज माफ करेगा। नवम सर्ग का यह चिंतन, अब सिनेमा को भी आईना दिखाता, नारी की असली शक्ति का, जो सही मायनों में अब अर्थ बताता।



## ॥ आर्थिक स्वतंत्रता और पंच—प्रभा का स्वावलंबन ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, नारी के उन आत्मनिर्भर हाथों को, जो बदल रहे हैं आज, अपनी ही उन पुरानी और काली रातों को।

कुंती अब **‘सेल्फ—हेल्प ग्रुप’** चलाती, गाँवों की उन बस्तियों में,

तारा अब **‘स्टार्ट—अप’** की मालकिन, अपनी ही नई हस्तियों में।

मंदोदरी अब **‘व्यापार’** करती, अपनी ईमानदारी और साख पर, अहिल्या अब कृषि में **‘क्रांति’** लाती, अपनी ही इस माटी व राख पर।

मैं लिखता हूँ वह पैसा, जो नारी के हाथ में अपनी ताकत है, आर्थिक आजादी ही तो, उसकी अपनी सबसे बड़ी इबादत है।

जब नारी कमाती है, तो पूरा परिवार अब संपन्न होता है, द्रौपदी का वह स्वाभिमान अब, सफलता का दर्पण होता है। मेरी लेखनी इस समृद्धि को, **‘पंच—प्रभा का उपहार’** कहे, जो गरीबी और शोषण के विरुद्ध, सबसे बड़ा आधार बने।

अब किसी पुरुष के आगे, उसे हाथ फैलाने की जरूरत नहीं, उसकी अपनी मेहनत ही तो, अब उसकी असली सूरत है सही। नवम सर्ग का यह स्वावलंबन, अब गाँवों से शहरों तक फैला, नारी की अपनी मेहनत से, अब महक उठा है हर एक मेला।



## ॥ पर्यावरण की रक्षा और नारी का प्रकृति—प्रेम ॥

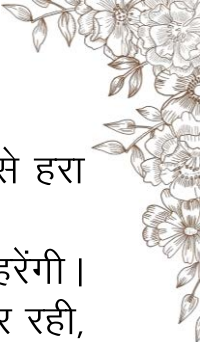
---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, पेड़ों को गले लगाती उन  
नारियों को,  
जो बचा रही हैं आज, हमारी इन सुंदर और हरी क्यारियों  
को ।  
मंदोदरी अब नदियों की सफाई का, एक बड़ा अभियान  
चलाती,  
अहिल्या अब बंजर भूमि पर, फिर से हरियाली है उगाती ।

द्रौपदी अब प्रदूषण के विरुद्ध, एक नई आज जंग लड़ती,  
तारा जलवायु परिवर्तन की, हर एक बारीकी को है पढ़ती ।  
मैं लिखता हूँ वह **‘चिपको आंदोलन’**, जो नारी की ही  
तो देन है,  
प्रकृति को बचाने हेतु, उसका मन अब बहुत ही बेचैन है ।

धरती हमारी माँ है, और हम इसकी ही संतान हैं,  
कुंती की वह ममता ही तो, पर्यावरण का असली सम्मान  
है ।  
मेरी कविता इस जुड़ाव को, **‘प्रकृति और नारी का  
संगम’** कहे,  
जो इस मरती हुई दुनिया को, बचाने का मार्ग उत्तम करे ।





**‘पंच—प्रभा’** की ये रश्मियाँ अब, जंगलों को फिर से हरा  
करेंगी,  
नारी की वह करुणा ही तो, अब इस धरती का दुख हरेंगी ।  
नवम सर्ग की यह शीतलता, अब तपन को कम कर रही,  
नारी के इस संरक्षण से ही, यह सृष्टि अब फिर से उभर  
रही ।



## ॥ आज के 'मी-टू' आंदोलन और द्रौपदी की गूँज ॥

---

मैं **संजीव**, अब सुन रहा हूँ, उन दबी हुई चीखों का धमाका, जहाँ नारी ने अब तोड़ा है, अपने ही डर का वह बड़ा नाका। कार्यस्थलों पर होने वाले, उस मानसिक और शारीरिक शोषण पर, द्रौपदी ने अब कर दिया है, एक बड़ा और प्रहार पोषण पर।

**'मी-टू'** की वह आवाज आज की, द्रौपदी के ही तो स्वर हैं, जिसने बता दिया कि—अब दुःशासनों के दिन भी नश्वर हैं। मैं लिखता हूँ वह साहस, जो सदियों बाद अब बाहर आया है, नारी ने अब चुप्पी तोड़कर, अपना ही एक मान सजाया है।

सहन करना अब महानता नहीं, बल्कि एक अपराध है, अहिल्या की वह जड़ता तोड़ना ही, अब असली और बड़ी साध है।

मेरी लेखनी इस क्रांति को, **'सत्य का महा-विस्फोट'** कहे, जो हर छिपे हुए अपराधी की, अब कमर पर अपनी चोट करे।

**'पंच-प्रभा'** की ये रश्मियाँ अब, न्याय के नए कानून माँगतीं, नारी के सम्मान की खातिर, वे अब किसी से भी नहीं डरतीं। नवम सर्ग की यह दृढ़ता, अब कार्यस्थलों को सुरक्षित करेगी, नारी के उस गरिमा को, वह फिर से ऊँचे शिखर पर धरेगी।



## ॥ खेलों का मैदान और पंच-प्रभा का पराक्रम ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, ओलंपिक और कुश्ती के उन  
अखाड़ों को,  
जहाँ नारी अब पछाड़ रही है, पुरुष-सत्ता के उन बड़े  
पहाड़ों को।  
द्रौपदी का वह तेज अब, मुक्केबाजी की रिंग में भी दिखता  
है,  
तारा का सटीक निशाना अब, '**निशानेबाजी**' में नया  
इतिहास लिखता है।

कुंती अब मैराथन दौड़ती, अपनी सहनशक्ति और बल के  
साथ,  
अहिल्या अब वेटलिफ्टिंग करती, अपने ही उन फौलादी  
हाथ।  
मैं लिखता हूँ वह पसीना, जो स्वर्ण पदक बनकर चमकता  
है,  
नारी का वह शारीरिक बल अब, पूरी दुनिया में अब  
दमकता है।

हम कोमल हैं पर कमजोर नहीं, यह हमारा नया नारा है,  
मंदोदरी की वह अडिग शुचिता ही, अब हमारा सबसे बड़ा  
सहारा है।

मेरी लेखनी इस शौर्य को, '**मैदान की महाशक्ति**' नाम



दे,  
जो केवल चूल्हे तक सीमित नारी को, नया एक आयाम  
दे।

आज की पी.वी. सिंधु और मीराबाई में, ये पाँचों ही लड़ रही  
हैं,  
भारत के तिरंगे का मान, वे अब दुनिया भर में बढ़ा रही हैं।  
नवम सर्ग का यह गौरव, अब खेल-जगत की नई एक  
पहचान है,  
नारी का वह पराक्रम ही तो, अब इस राष्ट्र का असली  
सम्मान है।



## ॥ पुरुष मानसिकता में बदलाव और लेखक की अपील ॥

---

मैं **संजीव**, अब बात करूँ, आज के उन पुरुषों और पिताओं से, जो सीख रहे हैं आज, इन पाँचों महान और दिव्य कथाओं से। क्या हम केवल दर्शक रहेंगे? या हम भी अब सहभागी बनेंगे? क्या हम अपनी सोच बदलकर, नारी-शक्ति के ही पक्ष में तननेंगे?

अहिल्या को पत्थर बनाने वाले गौतम अब, क्षमा माँग रहे हैं, द्रौपदी का अपमान करने वाले समाज अब, खुद ही जाग रहे हैं। मैं लिखता हूँ वह परिवर्तन, जो पुरुष के हृदय में अब चाहिए, नारी को बराबरी का हक देना, अब हमारा निर्णय होना चाहिए।

बिना पुरुष के सहयोग के, नारी की राह अभी भी कठिन है, तारा की वह मन्त्रणा ही तो, अब हमारे लिए भी बहुत ही जटिल है।

मेरी कविता इस आह्वान को, **‘आधी आबादी का साथ’** कहे, जो भाई, पति और पिता के रूप में, थामे अब नारी का हाथ रहे।

**पंच—प्रभा** की ये रश्मियाँ अब, पुरुषों को भी रोशन करेंगी, नारी के प्रति उनके मन की, हर एक कड़वाहट को हरेंगी। नवम सर्ग का यह सामाजिक, मेल—मिलाप अब जरूरी है, तभी तो ‘पंच प्रभा’ की यह गाथा, अब होगी पूर्ण और पूरी है।



## ॥ आधुनिक साहित्य और नारी की नई परिभाषा ॥

---

मैं **संजीव**, अब लिख रहा हूँ, उन कवियों और लेखकों  
के लिए,  
जिन्होंने नारी को केवल, 'प्रेमिका' बनाकर रखा अपने  
लेखों के लिए।  
क्या वह केवल विरह में जलती, या श्रृंगार का ही एक  
सामान है?  
नहीं, वह तो संघर्ष की वह आग, और इस युग का नया  
वितान है।

मेरी '**पंच प्रभा**' सिखाती है—नारी को एक नया चेहरा देना,  
उसकी अस्मिता और उसके, बुद्धि के साथ ही अब घेरा  
देना।  
मैं लिखता हूँ वह साहित्य, जो यथार्थ की जमीन पर खड़ा  
हो,  
नारी का वह नया रूप, जो अब पुरुष के साहित्य से भी  
बड़ा हो।

कलम अब केवल कोमलता नहीं, बल्कि क्रांति भी लिखेगी,  
द्रौपदी की वह ज्वाला अब, हर एक पन्ने पर भी दिखेगी।  
मेरी लेखनी इस विधा को, '**नारीत्व का नया महाकाव्य**'  
कहे,  
जो रूढ़ियों को तोड़कर, अब भविष्य की नई राहों को लहे।



**पंच—प्रभा** की ये कथाएँ अब, नए कवियों की प्रेरणा बनेंगी,  
नारी के असली संघर्ष की, वे अब सबसे बड़ी एक श्रेणी  
बनेंगी ।

नवम सर्ग का यह सृजन, अब वैचारिक दुनिया को बदल  
रहा,  
साहित्य में नारी का स्थान, अब गौरव के नए सांचे में ढल  
रहा ।

## ॥ कानून, न्यायपालिका और पंच-प्रभा का संरक्षण ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, अदालतों के उन न्याय के तराजू को,  
जहाँ कानून अब देता है, नारी की उन अबला भुजाओं को  
नए बाजू को।  
अहिल्या का वह न्याय-बोध अब, **‘सुप्रीम कोर्ट’** के  
फैसलों में है,  
द्रौपदी की वह गरिमा अब, **‘घरेलू हिंसा अधिनियम’** के  
लेखों में है।

कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध, अब **‘विशाखा’**  
की वह गाइडलाइन है,  
तारा की वह नीति अब, **‘हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम’**  
की नई लाइन है।  
मैं लिखता हूँ वह कानूनी सुरक्षा, जो अब हर नारी को प्राप्त है,  
संविधान के उन अनुच्छेदों में, उसका मान अब पूरी तरह  
पर्याप्त है।

कानून की नजर में अब, स्त्री और पुरुष बिल्कुल समान हैं,  
मंदोदरी की वह शुचिता ही तो, अब न्याय का असली  
सम्मान है।  
मेरी कविता इस सुरक्षा को, **‘अधिकारों का कवच’** नाम दे,  
जो शोषित और पीड़ित नारी को, फिर से नया एक आयाम दे।





**पंच—प्रभा** की ये रश्मियाँ अब, जजों की कलम में भी बोल रही हैं,  
नारी के प्रति न्याय के, वे अब नए—नए द्वार खोल रही हैं।  
नवम सर्ग की यह कानूनी, दृढ़ता अब समाज को सुधारेगी,  
अपराधियों के मन में अब, कानून का नया डर भी डारेगी।

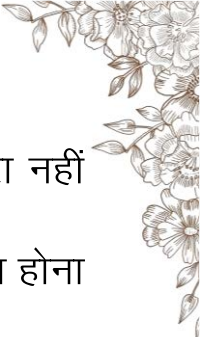


## ॥ भविष्य की बेटी और पंच-प्रभा का आशीर्वाद ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, पालने में खेलती उस छोटी  
सी जान को,  
जो बनेगी कल की अहिल्या, और बढ़ाएगी इस भारत के  
सम्मान को।  
उसके नन्हे कदमों में अब, द्रौपदी की वह दृढ़ता भी होनी  
चाहिए,  
उसकी तोतली बातों में अब, तारा की वह प्रखर बुद्धि भी  
होनी चाहिए।

कुंती की वह ममता लेकर, वह दुनिया को अपना बनाएगी,  
मंदोदरी की वह शुचिता लेकर, वह नए संस्कार यहाँ  
सजाएगी।  
मैं लिखता हूँ वह भविष्य, जो आज की बेटियों के हाथों  
में है,  
**‘पंच प्रभा’** का वह सारा तेज, अब उनकी ही उन पावन  
आँखों में है।



‘बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ’ अब केवल एक नारा नहीं होना चाहिए,  
बल्कि हर घर में एक ‘प्रभा’ का, नया ही एक सहारा होना चाहिए।  
मेरी लेखनी इस आशीर्वाद को, ‘भविष्य की नई नींव’ कहे,  
जो आने वाली हर पीढ़ी को, प्रगति की राह पर अब संजीद रखे।

पंच—प्रभा की ये पाँचों कलियाँ, अब उन नन्ही बेटियों में खिलेंगी,  
सफलता की हर एक मंजिल, उन्हें अब अपने आप ही मिलेंगी।  
नवम सर्ग का यह वात्सल्य, अब कल के सुनहरे सपनों को बुनता,  
नारी—शक्ति का यह नया भारत, अब अपनी ही नई राहें है चुनता।

## ॥ लेखक का वैश्विक विजन और 'पंच प्रभा' का प्रसार ॥

---

मैं **संजीव**, अब सोच रहा हूँ, महाकाव्य को विश्व-स्तर पर ले जाने की,

इन पाँचों प्रभाओं की गाथा को, पूरी दुनिया को अब सुनाने की।  
नारी की पीड़ा केवल भारत की नहीं, वह तो पूरी मानवता की है,  
पंच-प्रभा की यह ज्योति, अब हर देश की अपनी नई गाथा सी है।

अफगानिस्तान की उन बेटियों से लेकर, पश्चिम की उन नारियों तक,  
पहुँचना चाहिए यह संदेश, उन सबकी ही अपनी उन क्यारियों तक।

मैं लिखता हूँ वह वैश्विक क्रांति, जो इस कविता से शुरू होगी,  
नारी-शक्ति की यह गूँज अब, हर भाषा और हर एक सुर में होगी।

नारी का सम्मान ही, विश्व-शांति का एकमात्र मार्ग है,  
तारा की वह कूटनीति ही तो, अब वैश्विक स्तर पर हमारा ही सर्ग है।  
मेरी लेखनी इस विजन को, **'विश्व-चेतना का विस्तार'** कहे,  
जो सरहदों को तोड़कर, नारीत्व का नया एक संसार करे।

पंच-प्रभा की ये पाँचों रश्मियाँ अब, पूरी दुनिया को रोशन करेंगी,  
मानव-अधिकारों की रक्षा हेतु, वे अब नया एक काम करेंगी।  
नवम सर्ग की यह व्यापकता, अब ब्रह्मांड के कण-कण में  
समाहित है,

नारी-शक्ति का यह गौरव अब, पूरी पृथ्वी पर ही प्रवाहित है।



## ॥ उपसंहार और महा—उपसंहार की ओर ॥

---

यहाँ पूर्ण हुआ वह सर्ग, जो आधुनिकता का नया दर्पण बना,

‘पंच प्रभा’ की ये रश्मियाँ, अब वर्तमान का नया अर्पण बना ।

मैं संजीव, इस अध्याय में, आज की नारी के संघर्षों को गाया,

प्राचीन कथाओं के माध्यम से, आज के यथार्थ को यहाँ सजाया ।

अब नवम सर्ग को विराम दे, मैं दशम सर्ग की ओर बढ़ूँगा, जहाँ ‘महा—उपसंहार’ की, सबसे दिव्य और पावन कथा गढ़ूँगा ।

दसवाँ सर्ग बताएगा—कैसे ये पाँचों मिलकर एक ‘महा—शक्ति’ बनीं,

और कैसे इस महाकाव्य ने, नारीत्व की एक नई और अमर भाष्य चुनी ।

सफर अब अपने अंतिम पड़ाव पर है, बस एक और अध्याय बाकी है,

‘पंच प्रभा’ की पूर्णता की, अब सबसे सुंदर और भव्य झाँकी बाकी है ।

मेरी लेखनी तैयार है, अब इस महा—यज्ञ की पूर्णाहुति करने को,



नारी—शक्ति के इस गौरव को, अब सदा—सदा के लिए  
अमर करने को ।

मैं **संजीव**, अपनी वाणी को, अब और भी ऊँचा उठाऊँगा,  
महाकाव्य के इस अंतिम खंड को, अब पूरी दुनिया को  
सुनाऊँगा ।

नवम सर्ग संपन्न हुआ, अब दशम की है सबसे बड़ी बारी,  
नारी—गौरव की यह गाथा, अब होगी सबसे अधिक प्यारी  
और भारी ।



# दशम सर्ग महा—उपसंहार एवं पूर्णाहुति

---



## ॥ महा—यज्ञ की पूर्णाहुति और रचना का गौरव ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस, दिव्य और पावन शिखर के पास,  
जहाँ पूर्ण हो रहा है आज, मेरा यह दस सगों का महा—प्रवास ।  
पाँच प्रभाओं की यह गाथा, अब एक महा—ज्योति बन चुकी है,  
नारीत्व के गौरव की यह माला, अब पूरी तरह से बुन चुकी है ।

मैंने अपनी लेखनी को, इन पाँचों के चरणों में अर्पण किया,  
अपने हृदय के भावों से, मैंने नारी—शक्ति का तर्पण किया ।  
अहिल्या से शुरू हुई यह यात्रा, अब विश्व—संदेश पर आई है,  
मेरे इस महाकाव्य ने, अब एक नई आध्यात्मिक ऊंचाई पाई है ।

मैं लिखता हूँ वह पूर्णाहुति, जो इस सृजन का अंतिम सार है,  
जिसमें समाया हुआ, पूरी प्रकृति का ही पावन विस्तार है ।  
यह केवल अक्षरों का समूह नहीं, यह तो—एक क्रांति की गूँज है,  
जो भविष्य की पीढ़ियों हेतु, एक ज्ञान और शक्ति का पुंज है ।





मैं **संजीव** साक्षी हूँ आज, इस महान लक्ष्य की प्राप्ति का,  
जो मार्ग प्रशस्त करेगा अब, एक नई और दिव्य संस्कृति  
का ।

पहला शीर्षक यहाँ बताता, इस महा—उपसंहार का प्रारंभ  
महान,  
जहाँ शब्द अब बन रहे हैं, साक्षात ईश्वर का पावन  
वरदान ।

## ॥ पंच—तत्त्व और पंच—प्रभा का एकात्म भाव ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, कैसे ये पाँचों एक में समा गईं, जैसे पाँच नदियाँ मिलकर, एक महा—सागर में अब आ गईं। अहिल्या पृथ्वी, द्रौपदी अग्नि, कुंती जल का शीतल रूप बनीं, तारा वायु और मंदोदरी, अब आकाश की विशालता में सनीं।

इन पाँचों तत्वों से ही तो, यह सारा संसार निर्मित होता है, इन पाँचों नारियों से ही, धर्म का आधार अब पोषित होता है। मैं लिखता हूँ वह एकात्मता, जो अलौकिक और अखंड है, नारी—शक्ति का यह संयुक्त रूप, सचमुच बड़ा ही प्रचंड है।

जब ये पाँचों मिलती हैं, तब साक्षात् **‘आदि—शक्ति’** बनती हैं, जो सृष्टि के हर एक कण में, अपनी दिव्य आभा को बुनती हैं। मेरी लेखनी इस मिलन को, **‘ब्रह्मांडीय चेतना’** का नाम दे, जो हर भटकते हुए जीव को, सत्य का नया एक आयाम दे।

दशम सर्ग का यह दर्शन, अब द्वैत से अद्वैत की ओर है, जहाँ नारी और प्रकृति का, मच रहा एक ही पावन शोर है। मैं **संजीव**, इसी अद्वैत को, अपनी कविता में उतारा है, इन पाँचों की साझा शक्ति का, मैंने हृदय से लिया सहारा है।



## ॥ पंच—प्रभा का आध्यात्मिक निष्कर्ष — मोक्ष और शक्ति ॥

---

मैं **संजीव**, अब पहुँच गया हूँ, इस यात्रा के आध्यात्मिक पड़ाव पर,  
जहाँ ये पाँचों नारियाँ बैठी हैं, ज्ञान और वैराग्य की नाव पर।  
अहिल्या का उद्धार हुआ, और कुंती ने पाया परम शांति का धाम,  
द्रौपदी, तारा और मंदोदरी ने भी, जपा अंत में बस हरि का नाम।

इन्होंने सिद्ध किया कि—स्त्री देह केवल भोग की वस्तु नहीं,  
वह तो मोक्ष की राह पर चलने वाली, सबसे ऊँची एक अस्तु है।  
मैं लिखता हूँ वह दिव्यता, जो इंद्रियों के ऊपर की एक बात है,  
नारीत्व का असली अर्थ तो, उस परमात्मा के साथ का ही साथ है।

शक्ति का चरम लक्ष्य तो, स्वयं को शिव में विलीन करना है,  
इन पाँचों ने दिखाया कि—कैसे मृत्यु के भय से भी अब उबरना है।

मेरी लेखनी इस सिद्धि को, '**नारीत्व का निर्वाण**' नाम दे,  
जो हर आध्यात्मिक साधिका को, नया एक दिव्य आयाम दे।

दशम सर्ग का यह पक्ष, अब आत्मा को परमात्मा से जोड़ता,  
माया के उन बंधनों को, अब एक—एक कर यहाँ है तोड़ता।  
मैं **संजीव**, पाया है कि, भक्ति ही सबसे बड़ा सहारा है,  
इन पाँचों की अमर मुक्ति ने ही, इस जग को अब संवारा है।

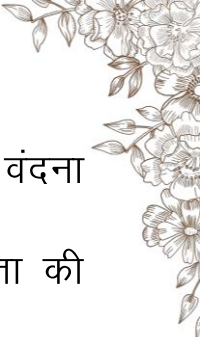
## ॥ काव्य—रस और सौंदर्य का 'अध्यात्म—संगम' ॥

---

मैं **संजीव**, अब देखता हूँ कैसे, नौ रस इसमें पूरी तरह  
समाहित हो गए,  
इन पाँचों के जीवन के पावन रंग, मेरी कविता के असली  
प्राण बन गए।  
कहीं करुण रस की अविरल धारा बही, तो कहीं वीर रस  
का हुंकार हुआ,  
अध्यात्म और श्रृंगार के अनोखे मिलन से, यह काव्य  
अलौकिक पार हुआ।

अहिल्या के पत्थर होने में करुणा, और द्रौपदी के क्रोध  
में वीर रस है,  
मंदोदरी के विलाप में शोक, और तारा के ज्ञान में अद्भुत  
का स्पर्श है।  
मैंने श्रृंगार को देह से मुक्त कर, उसे आत्मा के सौंदर्य से  
जोड़ा है,  
मैंने वासना के संकीर्ण मार्ग को, भक्ति की पावन गंगा में  
मोड़ा है।

मेरी शब्द—शक्ति अब इन रसों से, एक '**महा—भाव**' बन  
चुकी है,  
नारीत्व की यह पावन धारा, जन—जन के हृदय में छन  
चुकी है।



अलंकारों ने भी यहाँ झुककर, इन पाँचों प्रभाओं की वंदना  
की,  
जैसे शब्दों ने मिलकर आज, साक्षात् उस विधाता की  
अर्चना की।

मैंने **पंच—प्रभा** के इसी संगम को, अपने काव्य का मुख्य  
अलंकार माना,  
इन रसों के माध्यम से ही, मैंने उस परमात्मा के रूप को  
पहचाना।  
चौथा शीर्षक बताता है, इस सृजन की कलात्मक गहराई  
को,  
जो छूती है भावों के आकाश को, और सत्य की ऊँची  
ऊँचाई को।



## ॥ पुरुष और नारी – पूरकता का महा—सिद्धांत ॥

---

मैं **संजीव**, अब स्पष्ट करता हूँ, इस महाकाव्य का असली मर्म, कि पुरुष और नारी का साथ ही, है इस जगत का सबसे बड़ा धर्म।

ये प्रतिद्वंद्वी नहीं हैं, ये तो—एक—दूसरे के पूरक और आधार हैं, जैसे शब्द और अर्थ मिलकर ही, बनाते एक सुंदर संसार हैं।

अहिल्या के बिना गौतम अधूरे, और द्रौपदी बिना पांडव मौन थे, मंदोदरी बिना रावण की सत्ता में, बताओ धर्म के लक्षण कौन थे? मैं लिखता हूँ वह संतुलन, जो सृष्टि को चलाने हेतु जरूरी है, बिना एक—दूसरे के सम्मान के, यह जिंदगी बिल्कुल अधूरी है।

नारी शक्ति है, तो पुरुष उस शक्ति का शिव रूपी विस्तार है, इन दोनों के मिलन से ही तो, चलता यह सारा कारोबार है। मेरी लेखनी इस पूरकता को, '**अर्धनारीश्वर**' का नया पाठ कहे, जो भेद—भाव को मिटाकर, अब प्रेम की अविरल धार बहे।

दशम सर्ग का यह संदेश, अब हर घर में जाना चाहिए, स्त्री—पुरुष के बीच का वह, पुराना द्वेष अब मिटना चाहिए। मैं **संजीव**, इसी सामंजस्य से, यह अंतिम खंड यहाँ बुना, समता और समरसता के मार्ग को, मैंने सबसे श्रेष्ठ यहाँ चुना।



## ॥ महाकाव्य का सार – ‘सत्य, शिव और सुंदर’ ॥

---

मैं **संजीव**, अब समेटता हूँ, इस पूरी कथा के अमृत को यहाँ, कि नारी का चरित्र ही है वह, जो बनाता इस धरती को स्वर्ग यहाँ।

सत्य है—द्रौपदी की वह आग, जो अधर्म को भस्म कर देती है, शिव है—अहिल्या का वह मौन, जो शाप को भी वरदान कर देती है।

सुंदर है—मंदोदरी का सतीत्व और कुंती की वह ममता अपार, सुंदर है—तारा का वह ज्ञान, जो बढ़ाता है इस जगत का आधार। मैं लिखता हूँ वह **‘सत्यम शिवम सुंदरम्’**, जो इन पाँचों में व्याप्त है, मानव जीवन की सार्थकता हेतु, यही तो दर्शन पूरी तरह पर्याप्त है।

इन पाँचों के नाम का सुमिरन ही, जीवन को सफल बनाता है, पाप और अज्ञान के अँधेरे को, यह पल भर में ही मिटाता है। मेरी लेखनी इस त्रिवेणी को, **‘पंच—प्रभा’** का महा—मंत्र कहे, जो हर एक मुमुक्षु आत्मा को, देता अब दिव्य और स्वतंत्र तंत्र सखे।

दशम सर्ग का यह निचोड़, अब हमारे संस्कारों में बसना चाहिए, इस महाकाव्य की हर एक पंक्ति को, हमारे जीवन में रसना चाहिए। मैंने **‘पंच—प्रभा’** में इसी दिव्यता को, अपने शब्दों में यहाँ पिरोया है, **‘सत्य, शिव और सुंदर’** के इस संगम में, मैंने अपना हृदय डुबोया है।



## ॥ 'पंच प्रभा' का वैश्विक उद्घोष —विश्व शांति और नारी—शक्ति॥

---

मैं **संजीव**, अब दे रहा हूँ, पूरी दुनिया को एक महा—संदेश,  
कि नारी—शक्ति का सम्मान ही, मिटा सकता है हर एक  
क्लेश।

युद्धों की इस जलती हुई धरती को, अगर कोई बचा  
सकता है,  
तो वह नारी की करुणा ही है, जो नया स्वर्ग यहाँ रचा  
सकता है।

कुंती का वह शांति—प्रस्ताव, और मंदोदरी की वह सीख  
महान,

अगर आज का विश्व अपना ले, तो बन जाए यह धरती  
एक विहान।

मैं लिखता हूँ वह वैश्विक आह्वान, जो इन पाँचों से उपजा  
है,

घृणा और हिंसा के विरुद्ध, अब करुणा का ही सूरज सजा  
है।

नारी सृजन की देवी है, वह विनाश को कभी नहीं चुनती,  
वह तो शांति और प्रेम के ही, रेशमी धागों को हर पल  
बुनती।

मेरी लेखनी इस विजन को, 'विश्व—मैत्री का आधार' कहे,  
जो सरहदों के उस पार भी, प्रेम का नया विस्तार करे।





दशम सर्ग का यह उद्घोष, अब सात समुंदर पार जाएगा,  
हर पीड़ित और शोषित राष्ट्र को, यह नया रास्ता  
दिखाएगा।

मैं 'पंच-प्रभा' में अपनी वाणी को, विश्व-शांति हेतु  
समर्पित करता हूँ

'पंच प्रभा' की इस ज्योति को, मैं वैश्विक मंच पर अर्पित  
करता हूँ।



## ॥ प्रकृति की पुकार—नारी ही है वसुंधरा का रूप ॥

---

मैं **संजीव**, अब जोड़ता हूँ नाता, प्रकृति और नारी के उस मर्म का,  
जिसे समझना ही है असली ज्ञान, और पालन करना ही फल धर्म का।  
नारी अगर सहिष्णुता है, तो वही इस पावन धरती का आधार भी है,  
उसका अनादर प्रकृति का अपमान, और महा—विनाश का खुला द्वार भी है।

अहिल्या सा धैर्य है मिट्टी में, और द्रौपदी सी अग्नि वन में जलती,  
कुंती सा शीतल जल बहता, तारा सी वायु हर एक दिशा में चलती।  
मंदोदरी सा विशाल आकाश, जो सबको अपने आँचल में छुपाता है,  
प्रकृति और नारी का यह रिश्ता, सृष्टि के हर एक कण को भाता है।

जब—जब नारी पर चोट हुई, तब—तब इस धरती ने भी दुख झेला है,  
बिना प्रकृति के संतुलन के, मानव ने केवल विनाश का खेल खेला है।



मैं लिखता हूँ वह चेतावनी, जो पहाड़ों और नदियों से आ रही,  
नारी का सम्मान करो मानव, यह गूँज अब ब्रह्मांड में छा रही ।

मैंने ‘पंच—प्रभा’ के इसी सामंजस्य को, ‘पंच प्रभा’ का मूल मंत्र माना,  
प्रकृति को माँ और नारी को शक्ति, मैंने एक ही रूप में पहचाना ।  
आठवाँ शीर्षक यहाँ सिखाता, उस ब्रह्मांडीय संतुलन का सार,  
जहाँ प्रकृति और नारी मिलकर, करती हैं इस जग का पूर्ण उद्धार ।

## ॥ नारी का आत्म-सम्मान और समाज का दायित्व ॥

मैं **संजीव**, अब पुनः दोहराता हूँ, नारी के उस स्वाभिमान की बात, जिसे सुरक्षित रखना ही है, इस सुसभ्य समाज की असली साच। पाँचों प्रभाओं ने सिखाया—झुकना नहीं, बल्कि तपना ही जीवन है, पर क्या समाज ने भी किया, उनके प्रति अपना कोई अर्पण है?

नारी की सुरक्षा केवल कानून नहीं, बल्कि हमारी सोच पर टिकी है, उसकी गरिमा की रक्षा तो, हमारे ही संस्कारों में अब लिखी है। मैं लिखता हूँ वह दायित्व, जो हर नागरिक को अब निभाना है, नारी को वस्तु नहीं, बल्कि उसे साक्षात् 'प्रभा' ही मानना है।

जहाँ नारी पूजी जाती है, वहाँ देवता वास करते हैं, यह केवल मंत्र नहीं, इसे आचरण में लाना ही तो असली धर्म है। मेरी कविता इस कर्तव्य को, **'सभ्यता का पैमाना'** नाम दे, जो हर एक बेटी को, निर्भय होकर जीने का नया आयाम दे।

दशम सर्ग की यह पुकार, अब एक सामाजिक संकल्प बन चुकी है,

नारी के मान-सम्मान की भेरी, अब चारों दिशाओं में बज चुकी है।

मैं **संजीव**, अपनी लेखनी से, यह सत्य पुनः स्थापित करता हूँ, नारी के सुरक्षित भविष्य हेतु, मैं यह महाकाव्य अर्पित करता हूँ।



## ॥ समाज के 'कर्णधारों' को अंतिम चेतावनी और बोध ॥

---

मैं **संजीव**, अब प्रश्न करता हूँ, इस सत्ता और समाज के ठेकेदारों से,  
कब तक सुरक्षा मांगती रहेगी नारी, इन बंद और खोखले द्वारों से?  
यदि इन पाँचों प्रभाओं का सम्मान, तुम्हारे आचरण में न आया,  
तो समझो तुमने अपनी सम्यता का, सर्वनाश ही अब निकट बुलाया।

सिर्फ मंचों पर भाषण नहीं, अब व्यवहार में भी वह सम्मान चाहिए,  
नारी की स्वतंत्र चेतना का, तुम्हें भी अब सच्चा भान चाहिए।  
कानूनों की लंबी फेहरिस्त में, उसकी गरिमा कहीं खो जाती है,  
उसकी सिसकी और उसकी तड़प, अब पत्थर की मूर्त हो जाती है।

मैं चेतावनी देता हूँ उस पुरुष को, जो शक्ति का संहारक बना है,  
जो अपनी झूठी श्रेष्ठता में, आज मानवता का ही घातक बना है।  
बिना नारी के आशीष के, कोई भी साम्राज्य कभी टिक नहीं पाया,  
जिसने भी उसका मान लुटाया, उसने केवल अपना अंत ही पाया।

मेरी लेखनी का स्वर आज, एक कड़वा और सम्पूर्ण सत्य बोलती है,  
यह समाज के बंद पड़े, विवेक के पटों को खोलती है।  
दशवाँ शीर्षक यहाँ खड़ा, एक प्रहरी और एक न्यायकारी बनकर,  
जो पूछेगा जवाब हर एक से, समाज का असली जिम्मेदार बनकर।

## ॥ भविष्य का भारत और नारी-शक्ति का स्वर्ण-युग ॥

---

मैं **संजीव**, अब देख रहा हूँ, भारत का वह भविष्य उज्ज्वल,  
जहाँ नारी-शक्ति के नेतृत्व में, राष्ट्र बनेगा सबसे अधिक सबल।  
अब अहिल्या की जड़ता नहीं, बल्कि उसकी नई मेधा का दौर  
होगा,  
अब द्रौपदी के अपमान का नहीं, बल्कि उसके न्याय का ही शोर  
होगा।

कुंती की ममता से सींचा हुआ, अब हर एक नागरिक होगा,  
तारा और मंदोदरी की बुद्धि से, यहाँ का हर एक शासक होगा।  
मैं लिखता हूँ वह स्वर्ण-युग, जो अब अधिक दूर नहीं है,  
नारी की अपनी क्षमता का प्रकाश, अब चारों ओर ही है।

भारत की असली शक्ति तो, उसकी इन पाँचों प्रभाओं में है,  
उनकी ही महान परंपराओं की, इन पावन और दिव्य हवाओं में है।  
मेरी कविता इस नवनिर्माण को, '**राष्ट्र का गौरव-गान**' कहे,  
जो विश्व-गुरु बनने की राह पर, भारत का असली सम्मान कहे।

दशम सर्ग की यह रश्मि, अब नए भारत की नींव रख रही है,  
नारी-शक्ति की यह गूँज अब, हर एक बाधा को चख रही है।  
मैं **संजीव**, इसी आशा से, अपनी इस महान रचना को गढ़ता हूँ,  
एक समृद्ध और सुरक्षित भारत की ओर, मैं अब कदम बढ़ाता हूँ।



## ॥ युवा पीढ़ी के नाम—एक ओजस्वी 'दीक्षा—मंत्र' ॥

---

मैं **संजीव**, अब आह्वान करता हूँ, राष्ट्र के उन तरुण युवाओं का,  
जो कल के निर्माता हैं, और रक्षक हैं—इन पावन पुरावों का।  
इन पाँचों प्रभाओं को तुम, अपने जीवन का असली आदर्श बनाना,  
किसी भी द्रौपदी के अपमान पर, तुम भी अब गांधीव उठाना।

अहिल्या का धैर्य हृदय में रखना, और कुंती सी अडिग मर्यादा  
पालना,  
नारी को वस्तु समझने की भूल को, मन से जड़ से उखाड़  
डालना।  
तारा की प्रखर बुद्धि अपनाओ, और मंदोदरी सा विवेक जगाओ,  
तुम अपनी वीरता को अब, नारी के सम्मान की रक्षा में लगाओ।

यह दीक्षा है उस भविष्य की, जहाँ बहन और बेटी निर्भय होंगी,  
जहाँ घर—घर में इन सतियों की, पावन गाथाएँ अब जय—जय  
होंगी।  
तुम शब्द नहीं, तुम शक्ति बनो, तुम **'पंच प्रभा'** के नए मशाल हो,  
तुम अधर्म के उस सीने पर, अब साक्षात् गरजता हुआ महाकाल हो।

मैंने यह मंत्र बुन डाला है, ताकि पीढ़ियों का संस्कार न सोए,  
नारी के अपमान का बीज, कोई कभी इस धरती पर न बोए।  
बारहवाँ शीर्षक समर्पित है, भारत के उस वीर और प्रबुद्ध युवा को,  
जो बदलेगा अपनी दृष्टि से, इस समाज की सड़ी—गली हवा को।



## ॥ काल के कपाल पर 'पंच प्रभा' का शिलालेख ॥

---

मैं **संजीव**, अब अंकित करता हूँ, समय की छाती पर ये अक्षर,  
जो युगों-युगों तक रहेंगे जीवित, बनकर नारीत्व का पावन स्वर।  
यह रचना मात्र कागज नहीं, यह तो इतिहास का वह नया मोड़  
है,  
जिसने पुरानी रूढ़ियों को तोड़ा, और सत्य संग नाताओं का जोड़  
है।

मेरी लेखनी ने आज समय को, एक नई दिशा और पहचान दी,  
नारी के सोए हुए स्वाभिमान को, फिर से एक नई ऊँची जान दी।  
हजारों वर्षों की जड़ता को, इन शब्दों ने आज यहाँ ललकारा है,  
पाँचों प्रभाओं के तेज ने, अब अंधियारे को जड़ से ही मारा है।

मैं लिखता हूँ वह चिरंतन सत्य, जो कभी भी मिट नहीं पाएगा,  
जो भी पढ़ेगा इस गाथा को, वह शक्ति का नया स्रोत पाएगा।  
यह शिलालेख है उस साहस का, जो विपदा में भी कभी न डरा,  
जिसने मरुस्थल जैसी दुनिया को, अपनी करुणा से फिर से हरा।

मैं **संजीव**, लिखता हूँ वह भविष्य, जो गौरव से अब चमक रहा,  
हर पन्ने पर इन सतियों का, पावन तप अब यहाँ दमक रहा।  
तेरहवाँ शीर्षक साक्षी है, इस महाकाव्य की अमिट धार का,  
जो गूँज बनेगा आने वाले, हर एक नए और दिव्य संसार का।





## ॥ साहित्य-कुंज में 'नारी-विमर्श' की नई परिभाषा ॥

---

मैं **संजीव**, अब देता हूँ साहित्य को, एक मौलिक और दिव्य आधार, जहाँ नारी अब अबला नहीं, बल्कि है स्वयं-सृष्टि का पूर्ण सार। पुराने कवियों ने जिसे केवल, सौंदर्य की उपमाओं में बाँधा था, मैंने उसकी शक्ति को पहचाना, और उसके आत्म-तत्व को साधा था।

नारी का रूप केवल देह नहीं, वह तो ब्रह्मांड की एक चेतना है, वह केवल उपभोग की वस्तु नहीं, वह तो ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना है। मेरी लेखनी ने उन बेड़ियों को, एक-एक कर आज यहाँ काटा है, मैंने समाज के झूठे मुखौटों को, सत्य के स्वर से ही अब काटा है।

यह काव्य साहित्य के इतिहास में, एक क्रांतिकारी अध्याय बनेगा, जो आने वाले हर एक रचनाकार को, नया सत्य और नया न्याय देगा।

अब नायिका केवल विलाप नहीं, बल्कि रणचंडी बनकर उभरेगी, वह अपनी मर्यादा की खातिर, अब स्वयं अपने भाग्य को सँवरेगी।

मैंने **पंच-प्रभा** में इसी विमर्श को, अपनी कविता का प्राण बनाया है, इन पाँचों के जीवन दर्शन को, मैंने आधुनिक युग में सजाया है। चौदहवाँ शीर्षक गूँज रहा, साहित्य के इस पावन और दिव्य प्रांगण में, जहाँ नारी का सम्मान लिखा है, अब इस कविता के कण-कण में।



## ॥ पंच प्रभा—पीड़ित मानवता हेतु एक संजीवनी ॥

---

मैं **संजीव**, अब अर्पित करता हूँ यह काव्य, हर उस घायल मन को, जिसने सहा है तिरस्कार सदा, और झेला है इस भारी जीवन को। यह **‘पंच प्रभा’** कोई कथा नहीं, यह तो एक मरहम और एक आस है, जो सिखाती है कि घोर अँधेरे में भी, सूर्य का सदा ही निवास है।

उठो! और अपनी शक्ति पहचानो, तुम किसी से भी अब कम नहीं, जिसके भीतर ये पाँचों प्रभाएँ हों, उसे सताए अब कोई गम नहीं। अहिल्या का उद्धार हमें कहता, कि पत्थर भी फिर से जी सकता है, द्रौपदी का साहस सिखाता, कि अपमान का विष भी कोई पी सकता है।

यह महाकाव्य उन आंसुओं का, अब एक विजयी मुस्कान बनेगा, जो शोषित और उपेक्षित हैं, उनके लिए यह नया आसमान बनेगा। मैं फूँकता हूँ वह प्राण—वायु, जो मृतप्राय सपनों को फिर जगा दे, जो नारी के हर एक संघर्ष को, एक नई और ऊँची मंजिल दिला दे।

मैंने इसे **‘संजीवनी’** कहा, क्योंकि यह आत्मा को जगाती है, यह निराशा के घने बादलों को, एक पल में ही दूर भगाती है। पन्द्रहवाँ शीर्षक समर्पित है, संसार की हर उस संघर्षशील नारी को, जो चुपचाप सहकर भी रच रही, इस जग की सुंदर फुलवारी को।

## ॥ महा—उपसंहार —‘पंच प्रभा’ का शाश्वत संदेश और युग परिवर्तन ॥

मैं **संजीव**, अब घोषित करता हूँ, इस महाकाव्य का अंतिम महान सत्य,

कि नारी—शक्ति के बिना यह सृष्टि, है केवल अधूरा और जड़ नृत्य।  
अहिल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी—ये पाँचों केवल नाम नहीं,  
ये तो मानव चेतना के वे शिखर हैं, जिनका कोई दूसरा सानी नहीं।

उठो! और इन पाँचों प्रभाओं को, अपने भीतर फिर से जगाओ,  
अधर्म और अज्ञान के विरुद्ध, तुम भी अब अपनी मशाल उठाओ।  
मैं लिखता हूँ वह अंतिम संदेश, जो युगों—युगों तक अब गूँजेगा,  
जो भी इन पाँचों का सम्मान करेगा, वह स्वयं ही ईश्वर को  
पूजेगा।

यह **‘पंच प्रभा’** महाकाव्य अब, हर घर की एक गीता बन जाए,  
हर नारी के संघर्ष की, यह एक अमर और पावन संगीता बन  
जाए।

मेरी लेखनी अब मौन होती है, पर मेरे शब्द सदा यहाँ बोलेंगे,  
आने वाली हर पीढ़ी के लिए, ये नए और दिव्य द्वार खोलेंगे।

दशम सर्ग यहाँ पूर्ण हुआ, पूर्ण हुआ यह दस सर्गों का महा—यज्ञ,  
नारी—शक्ति का यह उद्घोष अब, बन गया है साक्षात् काल—अज्ञ।  
आज, मैंने अपना वचन निभाया, और गढ़ दिया यह नया इतिहास,  
**‘पंच प्रभा’** की यह अमर ज्योति, अब मिटाएगी जग का हर त्रास।



## ॥ रचनाकार का 'आत्म-बोध' और वैराग्य-भाव ॥

---

मैं **संजीव**, अब जान गया हूँ कि, मैं तो बस एक माध्यम मात्र था, इन दिव्य अनुभूतियों को जीने वाला, मैं केवल एक निमित्त पात्र था। लिखते-लिखते मैं खुद ही, इन कथाओं में कहीं पूरी तरह खो गया हूँ, नारी-शक्ति के इस महा-सागर में, मैं अब पवित्र होकर धो गया हूँ।

अभिमान नहीं, बल्कि एक तृप्ति है, जो मेरे अंतर्मन में समाई है, इस लेखन की कठिन यात्रा ने मुझे, खुद से ही नई पहचान दिलाई है।

शब्द मेरे नहीं थे, यह तो उन पाँचों की ही दिव्य प्रेरणा थी, मेरे हृदय के शून्य पटल पर, बस उनकी ही पावन वेदना थी।

अब न ख्याति की इच्छा है, और न ही किसी फल की कोई चाह है, सत्य को शब्दों में पिरो देना ही, कवि की असली और नेक राह है। मैं अब मौन की ओर बढ़ रहा, इस महा-सृजन के पूर्ण होने पर, जैसे कोई योगी लौटता है, अपनी तपस्या के संपूर्ण होने पर।

मैंने **पंच-प्रभा** के इस आत्म-बोध को ही, अपना सबसे बड़ा पुरस्कार माना, इन पाँचों की जीवन-गाथा में, मैंने स्वयं उस परमेश्वर को पहचाना।

सत्रहवाँ शीर्षक यहाँ बताता, एक लेखक के हृदय का निर्मल मौन, जहाँ **मैं** मिट गया है पूरी तरह, अब शेष रहा है बस सत्य है कौन?



## ॥ लेखक की अंतिम प्रार्थना और माँ शारदा का वंदन ॥

---

मैं **संजीव**, अब नतमस्तक हूँ, उस माँ शारदा के पावन चरणों में,  
जिसने दी मुझे यह शक्ति और बुद्धि, इन दस सर्गों के वर्णों में।  
मैं तो केवल एक निमित्त था, लिखने वाली तो वह स्वयं शक्ति थी,  
इन पाँचों प्रभाओं के प्रति, मेरी यह एक छोटी सी भक्ति थी।

हे माँ! मेरी इस लेखनी को, सदा सत्य के मार्ग पर ही रखना,  
नारी-शक्ति के इस गौरव को, मेरे शब्दों में सदा जीवंत रखना।  
मैं लिखता हूँ वह अंतिम कृतज्ञता, जो मेरे रोम-रोम से फूट रही,  
इस सृजन के महा-यज्ञ की, अब एक-एक कड़ी है यहाँ जुड़  
रही।

मेरी त्रुटियों को क्षमा करना, और मेरे भावों को स्वीकार करना,  
इस 'पंच प्रभा' महाकाव्य से, तुम पूरी दुनिया का उद्धार करना।  
मेरी कविता अब मेरी नहीं, वह तो अब तुम्हारी और संसार की है,  
नारी-शक्ति के इस वंदन की, और उसके पावन प्यार की है।

दशम सर्ग की यह प्रार्थना, अब शांति और संतोष से भरी है,  
मेरे इस कठिन परिश्रम की, अब फलीभूत हुई यह हरी है।  
मैं **संजीव**, अपनी आत्मा से, माँ सरस्वती को प्रणाम करता हूँ,  
इस महाकाव्य की पूर्णहुति को, मैं ईश्वर के ही नाम करता हूँ।

## ॥ माँ भारती के चरणों में—अंतिम वंदना और अर्पण ॥

---

मैं **संजीव**, अब खड़ा हूँ उस अंतिम मोड़ पर, जहाँ शब्द अब मौन होते हैं,  
जहाँ भक्त और भगवान के बीच, सारे पुराने मायावी बंधन खोते हैं।  
हे भारत माँ! तेरी इन पाँच बेटियों का, मैंने यह पावन यज्ञ—गान किया,  
अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुसार, मैंने यह श्रद्धा का लघु दान किया।

इसे स्वीकार करना माँ, और आशीष देना इस राष्ट्र की हर एक नारी को,  
कि वे मिटा सकें भविष्य में, अपने जीवन की सब पुरानी लाचारी को।  
यह मिट्टी गवाह है अहिल्या की, और इसी मिट्टी में द्रौपदी का जन्म हुआ,  
यहीं कुंती, तारा और मंदोदरी का, वह महान और दिव्य कर्म हुआ।

मेरी यह लेखनी सदा के लिए, तेरे ही चरणों की अब धूल बनी रहे,  
मेरे शब्दों की यह बगिया, सदा सत्य के सौरभ से अब सजी रहे।  
जब तक गंगा—यमुना बहती रहें, तब तक यह गाथा अमर रहे,  
नारी—शक्ति का यह अमर दीप, भारत के हर घर—घर में जलता रहे।

मैं **संजीव** नतमस्तक होकर, अपनी मातृभूमि को प्रणाम करता हूँ,  
इस महाकाव्य की हर एक पंक्ति, मैं माँ भारती के ही नाम करता हूँ।  
उन्नीसवाँ शीर्षक साक्षी है, इस असीम भक्ति और गहरी श्रद्धा का,  
जो आधार बना है इस युग में, एक नई और ऊँची विचारधारा का।

## ॥ महा—उपसंहार—‘पंच प्रभा’ की अनन्त ज्योति ॥

मैं **संजीव**, अब पूर्ण करता हूँ, यह बीस शीर्षकों का महा—अनुष्ठान,  
जहाँ **‘पंच प्रभा’** बन गई है अब, साक्षात्—इस ब्रह्मांड का विधान।  
सूर्य अस्त हो सकता है, शब्द—ज्योति सदा यहाँ जलती रहेगी,  
नारीत्व के गौरव की गाथा, काल के संग सदा ही चलती रहेगी।

अहिल्या, कुंती, द्रौपदी, तारा, मंदोदरी—ये पाँचों अब अमर हैं,  
ये हमारे चरित्र की नींव, हमारी संस्कृति का असली शिखर हैं।  
दशम सर्ग पूर्ण हुआ, और पूर्ण हुआ यह महाकाव्य का दिव्य प्रवास,  
अब इस ज्योति को रहने दो, जन—जन के हृदय के ही पास।

आने वाली पीढ़ियाँ जब भी, धर्म और शक्ति का कोई मार्ग खोजेंगी,  
वे **‘पंच प्रभा’** के इन पन्नों में, अपना गौरव और अपना भाग्य देखेंगी।  
यहाँ शब्द अब शांत होते हैं, अब उनकी गूँज अब अनन्त में जाएगी,  
नारी—शक्ति की यह महा—क्रांति, अब नया सतयुग इस धरा पर  
लाएगी।

मैंने अपना वचन है निभाया, और गढ़ दिया यह नया इतिहास,  
नारीत्व की यह अमर गाथा, मिटाएगी जग का हर एक त्रास।  
बीसवाँ शीर्षक यहाँ लगाता, इस महा—यज्ञ की पावन और अंतिम  
बिंदी,  
सदा जय हो नारी—शक्ति की, और अमर रहे हमारी पावन भाषा हिंदी।



## महाकाव्य की पुष्पिका

---

॥ इति शुभम् ॥

संजीव विरचित 'पंच प्रभा' महाकाव्य के दसों सर्ग यहाँ पूर्ण हुए। यह रचना समाज में नारी की गरिमा, उसके स्वाभिमान और उसकी नेतृत्वकारी शक्ति को पुनर्स्थापित करने हेतु एक मशाल के रूप में प्रज्वलित रहे।

स्थान: भारत

समय: संवत् 2082 (वर्ष 2026)



## ॥ जयघोषः पंच प्रभा अभ्युदय ॥

गूँज उठा आकाश आज, शुचि 'पंच प्रभा' का गान हुआ,  
सृजन-तपस्या पूर्ण हुई, जन-मानस का कल्याण हुआ।

प्रथम प्रभा में शक्ति जागी, द्वितीय ज्ञान की धार बहे,  
तृतीय शांति, चतुर्थ कर्म, पंचम से शिव-तत्त्व रहे।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश देव, आशीष वृष्टि अब करते हैं,  
गौरी, लक्ष्मी, शारदा मात, सुख-वैभव झोली भरते हैं।

दसों सर्ग की पावन सरिता, जन-जन के मन को धोती,  
बीस-बीस शीर्षकों में गुंथे, सोलह-सोलह पंक्ति-मोती।

कोटि-कंठ से गूँज रहा, यह 'पंच प्रभा' का महामंत्र,  
ध्वस्त हुए सब अंधकार, जाग्रत है अब लोक-तंत्र।

देवलोक से पुष्प गिरे, गंधर्वों ने भी वीणा तानी,  
अमर रहे यह काव्य-ज्योति, ऋषियों की अनमोल वाणी।

संजीव-लेखनी धन्य हुई, जो सुरभित भाव जगाती है,  
'पंच प्रभा' की दीप्ति अब, जग में अलख जगाती है।

जय-जय देव, जय-जय प्रकाश, जय पंच-प्रभा का ओज प्रखर,  
मंगलमय हो धरा आज, मंगल हो अब डगर-डगर।



## लेखकीय आभार

---

मैं कृतज्ञ हूँ उन सभी अदृश्य प्रेरणाओं का, जिन्होंने मेरी लेखनी को इन 10 सर्गों तक थामे रखा। यह महाकाव्य मेरे अंतर्मन की वह खोज है जो सत्य और न्याय की प्यास से उपजी है। आप सभी पाठकों का हृदय से धन्यवाद, जो इस वैचारिक महायज्ञ के साक्षी बने।

नारी-शक्ति के इस वंदन को अपने हृदय में स्थान देने हेतु कृतज्ञता। सत्य और न्याय की इस यात्रा में सहभागी बनने के लिए धन्यवाद।



## निवेदन

---

**‘पंच—प्रभा’** आपके हाथों में है। इसके सृजन एवं प्रकाशन में आर्थिक खर्च की भरपाई आप साहित्य प्रेमियों के द्वारा ही संभव है। इसलिए हमें आर्थिक सहयोग अवश्य करें, ताकि हम साहित्य के क्षेत्र में निरंतर कार्य करते रहे। यदि आप आर्थिक सहयोग करते हैं तो हम या हम जैसे साहित्य सृजन के क्षेत्र में कार्य करने वाले कलमकारों का उत्साह बढ़ेगा। आप पाठक ही कवि, लेखक, साहित्य—साधकों के लिए बल हैं। यह ‘पंच—प्रभा’ आपके हाथों में सौपते हुए मुझे गर्व है कि मैं इस महान भूमि का एक अदना सा लेखक और सेवक हूँ।

—  
संजीव कुमार सिंह



## परिचय

---

### कवि: संजीव कुमार सिंह

हिन्दी साहित्य और समसामयिक विषयों पर अपनी पैनी लेखनी के लिए पहचाने जाने वाले संजीव कुमार सिंह का जन्म 23 मार्च 1980 को बिहार की साहित्यिक भूमि (आरसीनगर एरौत ), समस्तीपुर में हुआ। माता श्रीमती रंजना देवी एवं पिता श्री शिवशंकर प्रसाद सिंह के संस्कारों से अभिसिंचित संजीव कुमार सिंह की लेखनी में वैचारिक स्पष्टता और काव्यात्मक कोमलता का अनूठा संगम मिलता है।

समस्तीपुर जिले के एरौत (आरसी नगर), रोसड़ा के मूल निवासी संजीव कुमार सिंह का साहित्यिक सफर अत्यंत विविधतापूर्ण और प्रेरक रहा है। इससे पूर्व इनकी कई महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित होकर चर्चा बटोर चुकी हैं, जिनमें शामिल हैं:—

- 1 बिहार का सत्ता संग्राम, (110 वर्षों का राजनीतिक संग्राम), मूल्य—333 रुपये
- 2 रोसड़ा की राजनीतिक यात्रा (क्षेत्रीय राजनीति आधारित), मूल्य—249 रुपये
- 3 रोसड़ा की संजीवनी (काव्य—संग्रह), मूल्य—400 रुपये
- 4 अर्धांगिनी: एक काव्य यात्रा, (हास्य—व्यंग्य एवं प्रेम आधारित), मूल्य—200 रुपये

5 मानव जीवन: एक काव्य यात्रा ( महाकाव्य), मूल्य—300  
रूपये

6 पंच—प्रभा ( महाकाव्य ), मूल्य —558 रूपये

7 ऋतु—अभिनंदन: दो सौ सोपान (महाकाव्य), अप्रकाशित

**शिक्षा:** बी० ए० आनर्स एवं विद्या—वाचस्पति( विक्रमशिला  
हिन्दी विद्यापीठ ),

**वर्तमान वृत्ति:** बीमा सलाहकार, पत्रकारिता एवं संजीवनी  
मेमोरियल पब्लिक स्कूल एरौत, निदेशक

**पत्राचार का पता:** आरसीनगर एरौत, रोसड़ा, समस्तीपुर,  
बिहार, पिनकोड :848210

**सम्पर्क सूत्र:** 9955644631, 7903904471,

**ईमेल:** [ainasamastipur@gmail.com](mailto:ainasamastipur@gmail.com)